पुस्तक प्राप्ति स्थान
सम्यग् ज्ञान प्रचारक मंडल, जोधपुर
व
जिनवाणी कार्यालय
लालभवन, जयपुर।

सम्वत् २ ११
मूल्य डेढ रुपया

मुद्रक —
जयपुर प्रिंटर्स, जयपुर।

आभार प्रदर्शन

प्रस्तुत "अमरता के पुजारी" का प्रकाशन यद्यपि "सम्यग् ज्ञान प्रचारक मण्डल" के नाम से हो रहा है किन्तु वस्तुत प्रकाशन का एकमात्र सारा श्रेय उन लोगों को है जिनके आर्थिक साहाय्य से यह प्रकाशित हो रहा है।

विगत चातुर्मास में सातारा निवासी स्वर्गीय राजमलजी कटारिया की धर्मपत्नी श्रीमती फूलकुवर बाई ने इसके प्रकाशन के लिए ३००) रुपये दिए थे—किन्तु कार्य की विशालता और नये आकार प्रकार के कारण उतने भर से यह काम नहीं हो पाता। प्रसगवश इसवर्ष म० श्री के दर्शनार्थ जयपुर आए हुए स्वनामधन्य श्रीमान् इन्द्रनाथजी सा० मोदीजी (जोधपुर) के सामने जब यह विषय रखा तो आपने प्रकाशन व्यय का शेष भाग जो ५००) के करीब होता है अपने ऊपर स्वीकार कर लिया।

इसके अतिरिक्त श्रीमान् विलमचन्दजी भण्डारी जोधपुर की भावना भी बहुत पहले से इसके प्रकाशन की थी और इसके लिए उन्होंने २००) रुपये भी दिए जो लेखन, प्रूफ सशोधन ,एव इसी पुस्तक के अन्यान्य कतिपय मदों में खर्च हुए।

इस प्रकार इन तीनों उदारमना दाताओं ने जो आर्थिक मदद की तदर्थ मण्डल की ओर से मैं इन तीनों का आभारी हूँ और इन्हें शतश साधुवाद प्रदान करता हूँ।

विनीत —

शशिकान्त झा

अभिनन्दन

श्रद्धेय जैनाचार्य पूज्यश्री शोभाचन्द्रजी म० के सुप्रशस्त जीवन की पुनीत गाथा के कुछ अंश सुन गया, बड़े चाव से, बड़े भाव से। सुन कर हृदय हर्ष से पुलकित हो उठा। कुछ विशिष्ट प्रसंगों पर तो अन्तर्मन भावना की वेगवती लहरों में डूब डूब-सा गया।

विद्वान् लेखक की भाषा मांसल है, पुष्ट है और है मन को गुदगुदा देने वाली। भावांकन स्पष्ट है, प्रभावक है और है जीवन स्तर को ज्योतिर्मय बना देने वाला। भाषा और भाव दोनों ही इतने समीप एवं समरस हैं कि पाठक की अन्तरात्मा सहसा उच्चतर आदर्शों की स्वर्ण शिखाओं को स्पर्श करने लगती है।

विगत जोधपुर के संयुक्त चातुर्मास में पूज्य शोभाचन्द्रजी म० की पुण्य जयन्ती के समारोह में भाग लेने का मुझे भी शुभवसर मिला था वहां उस समय उनके सम्बन्ध में जो कुछ सुना, वह अत्यन्त श्रद्धा सद्भक्ति, सहज-स्नेह और सद्भावना से भरा हुआ था। उनके तप, त्याग, वैराग्य, संयम तथा समभाव के कथा चित्रों का रंग बहुत गहरा अवश्य आकर्षक है। वस्तुत आचार्य श्री जी अपने योग्य एक महान् आत्मयाम् दिव्य सन्त रहे हैं। उनका जीवन किसी एकान्त कोने में अवरुद्ध न रहकर

सर्व साधारण जनता के सामने आना ही चाहिये था। मुझे स्पष्ट कहने दीजिये, जो आज हुआ है वह बहुत पहले ही हो जाना चाहिये था।

श्री वर्धमान स्था० जैन श्रमण सघ के आदरणीय सहमन्त्री स्वनाम धन्य प० मुनि श्री हस्तीमलजी महाराज शत सहस्रश' धन्यवादार्ह हैं कि जिनके विचार प्रधान निर्देशन के फलस्वरूप जीवन चरित्र रूप यह सुन्दर कृति जनता के समक्ष आ सकी। सहमन्त्रीजी की ओर से अपने महामहिम गुरुदेव के चरणों में अर्पण की गई यह सुवासित श्रद्धाञ्जलि जैन इतिहास की सुदीर्घ परम्परा में चिर-स्मरणीय रहेगी। "धन्योगुरुस्तथा शिष्य ।"

—अमर मुनि

मानपाडा, आगरा
ता० १६-१०-५४ ई०

अनुक्रमणिका

समाज सेवी प्रमुख श्रावक

स्वर्गीय सेठ श्री छगनलालजी

रीया वाले (अजमेर)

वर्तमान मे आपके वश मे आपकी धर्मपत्नी तथा सेठ नोरतनमलजी व वल्लभदासजी आदि विद्यमान हैं।

सहायकों का संक्षिप्त परिचय

जोधपुर निवासी श्रीइन्द्रनाथजी मोदी, जज राजस्थान हाई कोर्ट इस पुस्तक के प्रकाशन मे प्रमुख सहायक हैं। आप ऐसे शुभ कार्यों मे सदा ही सहानुभूति रखते हैं, यह प्रसन्नता की बात है। संक्षेप में आपका परिचय निम्न प्रकार है —

आपके पिता, स्वर्गीय श्री शम्भुनाथजी, जोधपुर राज्य के यशस्वी सैशन जज थे। आपने बी० ए० की परीक्षा प्रथम उत्तीर्ण की तथा 'सिंह-सभा' द्वारा सम्मानित किए गए। श्री इन्द्रनाथजी पर अपने सुयोग्य पिता के सस्कार एव सहवास का पूरा प्रभाव पडा। आपने अपनी प्रखर बुद्धि के कारण तुरन्त ही मान सहित एम ए, एलएल बी की परीक्षा उत्तीर्ण की। आप सदैव अपनी कक्षा में सर्व प्रथम रहे। कुछ ही समय के पश्चात् आप स्वर्गीय जोधपुर महाराजा श्री उम्मेदसिंहजी के वेटिंग मिनिस्टर के सेक्रेटरी के रूप में नियुक्त किए गए। उसके बाद बहुत वर्षों तक आपने अपनी स्वतन्त्र वृत्ति 'वकालत' को अपनाकर जन साधारण की सेवा की। अपने पेशे मे यश प्राप्ति के साथ ही साथ, आप समय-समय पर कभी जोधपुर नगरपालिका के अध्यक्ष, कभी लोकल सेल्फ गवर्नमेंट के डाइरेक्टर, लगातार अनेक वर्षों तक जोधपुर बार एसोसिएशन के अध्यक्ष एव जोधपुर राज्य असेम्बली के माननीय सदस्य रहते हुए जन सेवा में सलग्न रहे। राजस्थान के एकीकरण के उपरान्त आप राजस्थान असेम्बली में (opposition) विरोधी दल के उपनेता बनाए गए। आपके उच्चतम विचार, आपकी कार्य-क्षमता एव अनुभवों को देखते हुए, सरकार ने आपको वकालत के पेशे से न्यायाधीश के पद पर सुशोभित किया। ऐसे उच्च पद पर आसीन रहते हुए भी आप पारिवारिक एव धार्मिक सस्कारों के कारण सदैव समाज सेवा के लिए तत्पर रहते हैं। वर्तमान में आप श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक

संघ जोधपुर, के सभापति, श्रीसरदार हाई स्कूल जोधपुर, की कार्य समिति के अध्यक्ष एवं ओसवाल श्री संघ की प्रमुख सभा के अध्यक्ष पद पर सुशोभित हैं।

आप इस पुस्तक के प्रमुख सहायक एवं श्री सम्यक् ज्ञान प्रचारक मंडल के अध्यक्ष हैं। आपका इस पुस्तक के प्रकाशन में सहयोग सधन्यवाद स्वीकार करते हुए हम आशा करते हैं कि समाज के अन्य धनी मानी सज्जन भी आपके साहित्य प्रेम का अनुकरण कर अपनी चंचल लक्ष्मी का सदुपयोग करते हुए अपने धर्म प्रेम का परिचय देते रहेंगे।

सतारा निवासी श्री रामलालजी कटारिया की धर्मपत्नी ने स्वर्गीय श्री कटारियाजी की स्मृति में रु० ३०) का सहयोग दिया और पूज्य श्री का जीवन चरित्र या अन्य कोई साहित्य इससे प्रकाशित किया जाय ऐसी भावना व्यक्त की। आप बड़ी गुरुभक्त एवं धर्मपरायणा सन्नारी हैं।

श्री विजयचन्दजी भंडारी, जोधपुर—आप पूज्य श्री के श्रद्धालु भक्तों में से एक हैं। आपने वर्षों जोधपुर में फाइनेन्स सैक्रेटरी के अधिकारपूर्ण पद पर कार्य किया है। आपके मन में बड़ी गुरुभक्ति है। आपको पूज्य श्री के जीवन चरित्र का मुद्रित भाग दिखाया गया तो आप बड़े प्रसन्न हुए और बोले कि मेरी भी इसमें तुच्छ भेंट स्वीकार की जाय तो बड़ी खुशी होगी। यद्यपि रु० ६ ०) के ऊपर का समस्त प्रकाशन व्यय मोदी जी ने मंजूर कर लिया था फिर भी ब्लॉक आदि का अतिरिक्त खर्च जो करीब रु ६००) का होता था—आपने प्रदान किया। मंडल को आपके सहयोग से जो सहायता प्राप्त हुई उसके लिए धन्यवाद।

मंत्री

श्री सम्यक् ज्ञान प्रचारक मण्डल।
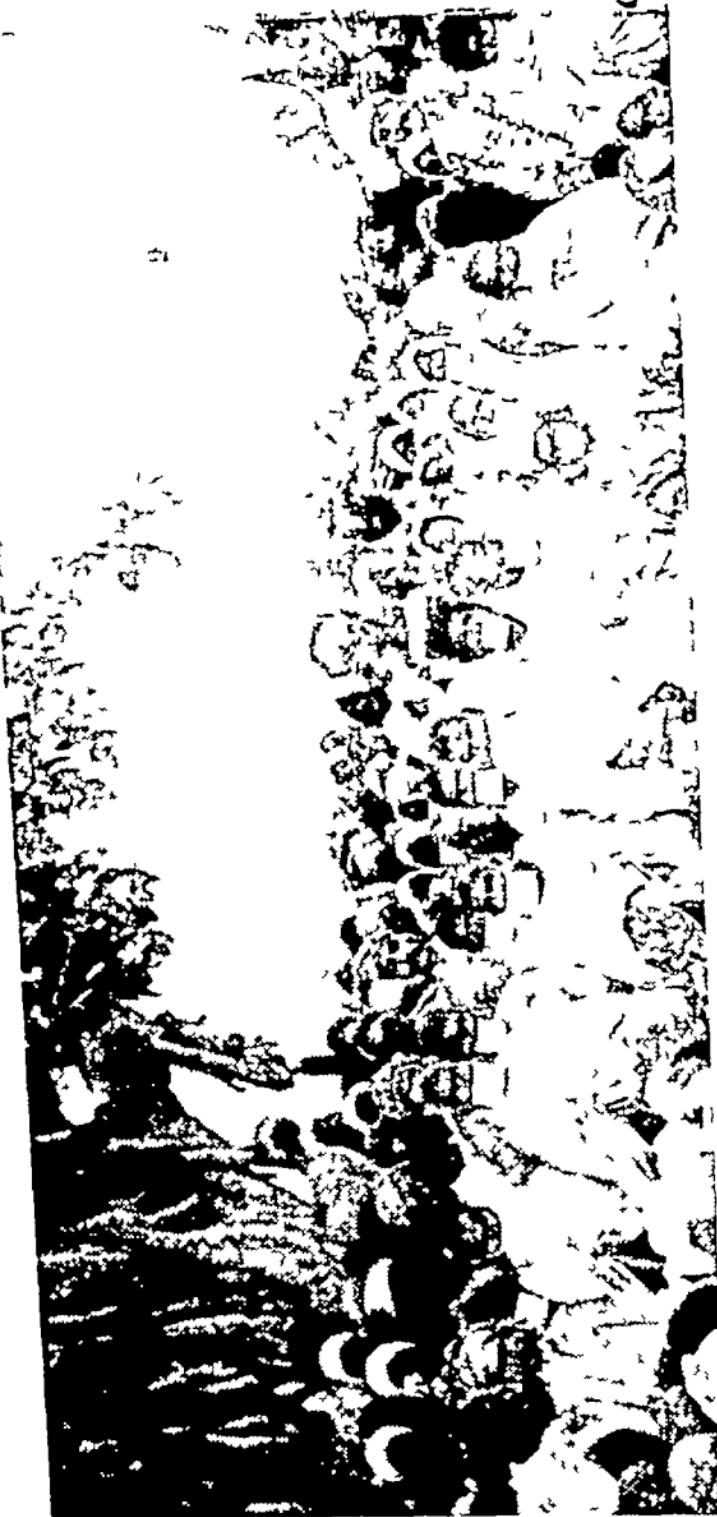
श्री आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, जयपुर

श्री मोतीलालजी शान्तीलालजी गांधी
पीपाड वालों की ओर से सादर भेंट

गुरु-वन्दन

यो लोकेऽभूत सुभव्यो, भविजन भवुकोद्भाव हेतुस्सुसेतु—
मर्यादायाश्च केतु कलिमल महसो भू विजेतुर्विजेता।
मस्तान शम्तायनोद्राक्, दुरित तति हर' श्रीधर. सपतेश
शोभाचन्द्रो मुनीन्द्रो गुणजलसुघन श्री घनो धी-धनोऽयम्॥

—कश्चित्त त्वदीय गुणानुरागी।

गुरु पद महिमा

अगर संसार में तारक गुरुवर हों तो ऐसे हों ॥ ध्रु० ॥

क्रोध औ क्षोभ के त्यागी, विषय रस के न जो रागी।
सुरत निज धर्म से लागी, मुनीश्वर हों तो ऐसे हों ॥१॥

न धरते जगत से नाता सदा शुभ ध्यान मन भाता।
वचन अघ मैल के हरता, सुज्ञानी हों तो ऐसे हों ॥२॥

क्षमा रस में जो सरसाये सरल भावों से शोभाये।
प्रपञ्चों से विरक्त स्वामिन पूज्यवर हों तो ऐसे हों ॥३॥

विनयचन्द पूज्य की सेवा चकित हों देख कर देवा।
गुरु भाई की सेवा के करैय्या हों तो ऐसे हों ॥४॥

विनय और भक्ति से शक्ति, मिलाई ज्ञान की युक्ति।
बने आचार्य जनता के, सुभागी हों तो ऐसे हों ॥५॥

—श्री गजेन्द्रमुनि

दो शब्द

उदेति सविता ताम्र ताम्रएवास्तमेतिच
"सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता"

उदयकालीन रवि की अरुण छवि को अस्तोन्मुख दशा में भी उसी रूप में देख कर किसी कवि हृदय हिमाद्रि से सूक्ति की यह सरस धारा फूट निकली कि सम्पत्ति और विपत्ति में महान् आत्मा में एकरूपता ही बनी रहती है। वस्तुत सुखदु खानुभूति से परे रहना, रगभरी दुनिया के मदभरे वातावरण में या गमभरे जगत के मनहूस अवसरों में समरूपता बनाए रखना कोई सरल और आसान वस्तु नहीं है। जलज की तरह जल में रहते हुए भी उससे निर्लेप बना रहना ही तो एक महान् जीवन की सच्ची पहिचान है।

आचार्य शोभाचन्द्रजी म० की झिलमिल जीवन झाकी ठीक उपरोक्त विचारों से मिलती जुलती दिखाई देती है। जो जीवन सासारिक वासनाओं से, कलुषित भावों से, बुरे आचरण से, ओछी मनोवृत्तियों और कुसगतियों से क्षण क्षण पल पल दूराति दूर बना रहा, परमार्थ और सयम पथ को छोड जिसका एक भी कदम अनजाने या अनदेखे किसी भ्रान्त पथ की ओर भूलकर भी नहीं बढा, भला। वह महापुरुष नहीं तो और क्या है। सकोच और सकीर्णता जहा चूक कर भी झाक नहीं पायी, सहृदयता और

महानता जिसे मरणघड़ी तक भी नहीं छोड़ सकी, उस जीवन को अनमोल नहीं तो और क्या कहें।

फूल जैसे अपने दो दिन की जिन्दगी में ही छवि, सौरभ, सौकुमार्य और आकर्षण से पराग मनको उन्मन कर जाता है वैसे आपने जो कुछ भी जिन्दगी पायी उसे पूरी २ परहित में बांट दी। अपने सुख, सुविधा और स्वार्थ की कभी कोई परवाह नहीं की और परहित को ही सदा अपना हित माना। यही कारण है कि देखने और सुनने वालों के दिल से आप आज भी दूर नहीं हो पाए हैं और न कभी होंगे।

आपके जीवनवृत्त का चित्रांकन कोई आसान वस्तु नहीं है। फिर भी भगवन के चन्द्र स्पर्श जैसी भावना से भावित होकर यह प्रयास उठाया जारहा है। क्योंकि जन मन जागरण, आत्मोत्थान समाज सुधार एवं राष्ट्रीय कल्याण की दिशा में महापुरुषों की जीवन झांकी अमित उपकारक और नवचेतनता प्रदान करने वाली होती है। शत सहस्र सुभाषित या सदुपदेशों के बनिस्बत सदाचरण का एक जीता जागता सादा सच्चा उदाहरण भी जन मानस पर अत्यधिक प्रभाव या असर डालने वाला होता है। कल्पना प्रसूत-गगन विहारिणी किसी कोमल कान्त पदावली के बजाय सत्पुरुषों के विविध लीलामय अभिनय की ओर लोकरुचि सचष्ट और जाग्रत देखी जाती है। अतएव महापुरुषों की जीवनी किसी भी राष्ट्र समाज या वर्ग विशेष के लिए एक अनमोल और अक्षय निधि मानी जाती है। इससे समाज जीवन में एक

सत्प्रेरणा और स्फूर्ति की प्राप्ति होती है और गति मति सदा उच्च भावो की ओर प्रगतिमय वनी रहती है। यही कारण है कि प्रत्येक काल में प्रत्येक देश या समाज में महान् पुरुषों की जीवनी विरासत के रूप में सजोकर रखने की रीति या परम्परा दृष्टिगोचर होती है। इसी महद् उद्देश्य से अनुप्राणित होकर आचार्य श्री के महानतम जीवन की एक झिलमिल झीनी झाकी पाठकों की सेवा मे उपस्थित की जारही है। यह कोई सरस उपन्यास अथवा प्रेम प्रवण कहानी नहीं और न कोई तिलिस्म या जासूसी कथानक ही है जो पाठकों की रुचि को तल्लीन और तन्मय करदे। किन्तु यह तो एक महापुरुष के जीवन का अनुभूतिमय प्रकट सत्य स्वरूप है जो महत्ता के उत्तु ग शिखरारोही दृढ हृदय राही को सुयोग्य सबल के रूप में गाढ़े समय में काम दे सकता है। अथवा यह एक वह प्रकाश स्तम्भ है जिसके आलोक मे हम अपना पथ भली भाति समझ कर मजिल की ओर कदम बढा सकते और अभीष्ट लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं।

मेरे पूज्यपाद पिता प० श्री दु खमोचन झाजी ने इस पवित्र जीवनी को अजमेर में आरम्भ कर उसकी पाडु लिपि तैयार की और फिर २००५ व्यावर में उसे परिमार्जन करदिया। किन्तु कतिपय कारणवश आजतक यह प्रकाशित नहीं हो पायी। इसवर्ष जयपुर चातुर्मास में मेरे सामने वह पाडुलिपि आई और मैंने इस काम को हाथ में लिया। कुछ आवश्यक, समार्जन, परिवर्द्धन और सुसंस्करण के बाद आगरा जाकर स्थानक वासी जैन जगत के

प्रतिभाकलाकोविद स्वनाम धन्य कविवर श्री अमरचन्द्रजी म० को एक जीवनी पढ़ सुनायी। कविजी ने स्नेहवश अस्वस्थता एवं विविध सत्कार्य कलाप में व्यस्त होते हुए भी जीवनी के अधिकांश भाग को ध्यानपूर्वक सुना और मुझे हृदय से उत्साहित किया जो सदा मेरे हित एक प्रेरणाप्रद अमरधन बना रहेगा। इस प्रकार जिसे बहुत ही पहले प्रकाशित हो जाना चाहिए था वह चीज चिरविलम्ब से आज प्रकाशित हो रही है।

मैं नहीं समझता कि यह कैसी बनी ? क्योंकि कहा भी है कि 'कवि' करोति काव्यानि रसं जानन्ति पण्डिताः" इस प्रकार सत्य के अनुकूल मेरे भी पाठक ही इसके एकमात्र अन्तिम निर्णायक हैं। मगर सम्पादन का दायित्व मुझ पर होने के नाते मैं इससे अपरिचित नहीं हूँ कि चाहते हुए भी इसे जैसा बनाना चाहता था नहीं बना पाया। इसका कारण मेरा अनेक कामों में एक साथ व्यस्त रहना और कुछ नैसर्गिक प्रमादादि बाधाएं ही हैं— जिससे कि मैं अपने को बरी नहीं मानता और सदर्थ क्षमा प्रार्थी हूँ।

अन्त में मैं स्पष्ट शब्दों में यह बता देना चाहता हूँ कि इस पुस्तक निर्माण का सारा श्रेय इसके चरित नायक आचार्यश्री के सुयोग्य उत्तराधिकारी पं० रत्न सहमंत्री श्री हस्तीमलजी म० साहब को है जिनकी सूझबूझ, सत्सहयोग सामग्री संकलन एवं सुयोग्य मार्गदर्शन तथा सन्निर्देश से यह देर से ही सही इस रूप में निकल सकी है। अन्यथा इसका प्रणयन या प्रकाशन सर्वथा असंभव था। पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ और पंक्तियों में महाराज श्री की

प्रतिभा प्रकटित हो रही है और त्रुटियां मुझे भविष्य सुधार के लिए प्रेरणा भरी इशारा करती हैं।

यदि इससे थोडा भी पाठकों का मनोरंजन और ज्ञान वर्द्धन हुआ तो मैं अपने श्रम को सफल समझूंगा। किमधिकेन—

लालभवन जयपुर।
ता० ८-११-५४ ई०

विनम्र —
शशिकान्त झा

पूत यच्चरित चकास्ति सतत, सृष्टावदृष्ट सद्रा–,
ज्य प्राज्य प्रतिम कदापि जगतोऽम्भ' सभवत्यत्रहि–
श्री जुष्टोऽपि जहद्रमां न विषये रेमे दराद्यो मुनी–
शोऽगर्वो गुरु धीरधीर मनसां भीतिञ्च योनीनशत्–
भापा भानुमपाचकार मनसेन्दु योऽय विजिह्ने सदा–
चञ्चचारु मरीचि राजिरुचिर य शश्वदुद्द्योतते,–
न्द्रो दर्प विजहौ यदीय सुपमामालोक्य लुब्धोऽभवन्–
मुद्रा लोकमति प्रतारण परां योऽनिन्दताऽनारतम्–
निस्तन्द्रो जिनचन्द्र चन्दनमसावानर्च लोकार्चितम्–
विज्ञ को न समार्चिचन् मुनिममु भावैरपारादरो–
जस्र घस्र सहस्रमस्रमभित सद्दश्य शान्त्युद्भवम्–
यस्यावश्यमपास्य लास्यमभिमानस्यापि वश्यात्मनाम्–
तार्तीयीक जन प्रयोजन पथात्-दूरातिदूरोऽभवन्–
मत्या गीष्पतिगी सुधामधरयन् पीयूष धारागिरा–
नित्य श्रावक चातके प्रविकिरन् भानुप्रभो यो वभौ–
शंमे सोऽनिशमादधातु भगवान् पूज्य प्रतापान्वित

जिनके हृदय हेमाद्रि से करुणा क्षमा मन्दाकिनी,
उद्भूत बन हरती त्रिविध पीड़ा हृदयजगव्यापिनी
सम्वत बने महनीय महिमा मोहमेघों के पवन,
आचार्य शोभाचन्द्रजी मुनिवर सदय वे धर्म घन,

× × ×

यो लोकेऽभूत् सुभव्यो भविजन मधुपोद्भासहेतुः सुसेतु-
र्मर्यादायाश्च येषु कलिमलमहसो भूविजेतुर्विवेता-
सत्त्वात् शत्त्वाय नो द्राक् दुरितवति हरः श्रीधरः संयतेशः,
शोभाचन्द्रो मुनीन्द्रो गुणगण सुधनः श्रीघनोधीघनोऽस्मम्

श्री मोतीलालजी शानोलालजी गांधी
पीपाड़ वालो की ओर से सादर भेंट

(१)

आमुख

सजातो येन जानेन यातिवश समुन्नतिम् ।
परिवर्तिनि ससारे मृत को वा न जायते ॥

ससार में उसी का उत्पन्न होना सफल और सार्थक है, जिसकी उत्पत्ति से वश की समुन्नति हो। अन्यथा, परिवर्तनशील इस जगत में मर-कर कौन जन्म ग्रहण नहीं करता ? अर्थात् आवागमन ससार का स्वभाव है, विशेपता वशोन्नति करने वालों की है। प त

सस्कृत के इस छोटे से श्लोक में सच्चाई का सार भरा हुआ है। प्रतिदिन हमारी आखों के आगे जन्म और मरण की एक न एक घटना घटती ही रहती है। कभी जन्मोत्सव की लोरी और कभी जनाजे का मर्सिया सुनकर भी हम प्रसन्न और दु खी नहीं हो पाते। परिवर्तनशीलता ससार का धर्म है। हर घडी, हर क्षण इसका रूपान्तर होता ही रहता है। जो कल था आज नहीं है, और जिसकी चर्चा भी कल नहीं थी, वही आखों के आगे आज नाच रहा है। हम किस २ पर ध्यान दें और किस किस के लिए

सोतें–धारा प्रवाह की तरह आवागमन का प्रवाह भी सदा चालू ही रहता है।

शिशिर ऋतु के आने पर वन की शोभा नष्ट भ्रष्ट हो जाती है। सुहावने वृक्षों की सारी सुन्दरता और हरियाली न जाने कहाँ चली जाती है। और पत्र रहित तरु समुदाय नंग धड़ंग तथा बेडौल दीख पड़ने लगते हैं। वृक्षों के आश्रय में रहने वाले पक्षियों में भी इन दिनों एक अजीब सिकुड़ता और मनहूसी छा जाती है। सारा वन प्रान्त सूना सूना और शोभा खोया सा मालूम पड़ता है।

प्रकृति के इस उदासी भरे भद्दे रूप को देख कर दर्शकों को, घड़ी भर के लिए भी यह विश्वास नहीं हो पाता कि कभी इन उजड़े उखड़े बिटपों की भी सलोनी और सुहावनी सूरत रही होगी? कभी इनकी भी हरी डालियां फल-फूलों से सज्जित, और भंवरों के गुन गुन गीतों से गुञ्जित तथा पक्षियों के कलनाद से मुखरित, सघन सुहावनी छाया से, थके मुसाफिरों के उचटे मन को शान्ति एवं नव-चेतनता प्रदान करती होगी? वर्तमान की विफलता अतीत की सफलता को भी आँखों से ओझल कर देती है, स्मृति को विस्मृति के गर्त में गिरा देती है।

चल-चित्र (सिनेमा) की तरह काल का रीत बदल जाता और देखते ही देखते जब प्रकृति के रंग-मंच पर ऋतुराज बसन्त का शुभागमन होता है तब नवकिसलयों से वृक्ष-वृन्द और लता-लता सुसज्जित कर दी जाती तथा कुसुम २ कुसुम-कलियों एवं मंजरियों से सुशोभित हो उठती हैं। एक अजीब आकर्षण और मादकता से वातावरण दमक उठता है। वन का कोना-कोना एक नयी आभा,

शोभा से प्रफुल्लित हो उठता है। हर्ष-विभोर हो भ्रमरवृन्द मादक मकरन्द के रसास्वादन में सुध-बुध भूल बैठता है और पपीहे की पी कहा की सुरीली तान से सारा वन प्रान्त प्रसन्न और पुलकित बन जाता है। शिशिर के अवसान पर ऋतुराज का ऐसा ही सुहावना उदय या अवतार होता है।

इसी तरह दुनियां में हर रोज किसी न किसी का अस्त और उदय होता ही रहता है। विविध विचित्रताओं से भरे अनेक रूपों वाले इस विलक्षण विश्व में, कौन कहा तक और कब तक किस-किस को स्मरण रक्खे? प्रवाह में बहते हुए जल-कण की तरह एक प्रकार से सारी दुनियां बहती जा रही है। अनुक्रम से अगले के स्थान पर पीछे वाले और उनकी भी जगह उसके पीछे वाले प्रतिक्षण पूरा करते आरहे हैं। एक के बाद दूसरा और उसके पीछे तीसरा बस यही सिलसिला और परम्परा है, यही भूमिका और रूप-रेखा है, इस परिवर्तनशील ससार की। किसी का भी अस्तित्व स्थायित्व लिए, मरण अमरत्व लिए और जीवन तथा यौवन चिरन्तनता लिए दिखाई नहीं देता। ध्वस और महा-नाश की काली छाया सृजन के मुख-मण्डल पर हर घड़ी मडराती रहती है। सृजन और सहार की यह आखमिचौनी न तो कभी बन्द हुई और न कभी होने ही वाली है। धूपछाह का यह निराला अभिनय अविराम गति से चलता ही रहता है।

ऐसे क्षणभगुर और चचल-जीवन में भी किसी-किसी की जीवन-लीला बरबस मन को मोहती रहती है। उसकी मधुर याद सदियों, सहस्राब्दियों तक मानस-पटल पर विद्युत्-रेखा की तरह रह-रह कर चमक उठती है। स्मृतिया धुधली बन जातीं मगर

मन इन्हें फिर भी भूलना नहीं चाहता। उनके अलौकिक गुण अदम्य उत्साह, दृढ़ लगन, करुणापरायणता और मानवता के प्रति सतत की हुई सेवा भावनाएं मधुर-स्वप्न की तरह साकार रूप धारण कर निद्रावस्था में भी हृदय को एक अनिर्वचनीय आनन्द प्रदान करती हैं। प्रकाश-स्तम्भ की तरह विपथान्धकार में भूले भटके जन-मन को सत्पथ पर चलने की प्रेरणा वितरण करती हैं। ये हैं हमारे सत्य-भुवन के अमर-सुषमा-सेनानी त्यागवीर सन्त शिरोमणि-साधु समुदाय। जो अकिंचनता से सकिंचनता को, त्याग से राग को, फकीरी से अमीरी को, परमार्थ से स्वार्थ को, दुःख-सहन से सुख को और योग से भोग को सदा शिकस्त देते रहे हैं। दुनियां का कोई आकर्षण जिन्हें कभी पथच्युत नहीं कर सका माया की छाया जिनके दिव्यालोकित गात्र को कभी छू नहीं सकी और जगत का प्रपंच जिन्हें रंच भर भी सत्य व अहिंसा के पथ से कभी नीचे उतार नहीं सका। बड़े-बड़े सम्राटों का शिर स्वतः जिनके आगे झुक गया। मगर विविध प्रलोभनों और भुलावों के सम्मुख भी जो कभी झुक नहीं पाए, ऐसे विरल विभूतियों की महिमा यह संसार कैसे भूल सकेगा? जिनसे हमारी मानवता अनुप्राणित हुई देवताओं के लिए भी आकर्षण की वस्तु बन गई है उन ज्योतिर्धरों की यशोमूर्तियां कोई कैसे भुलादे? जिनका जीवनवृत्त मोह और संशयग्रस्त चित्त को भी धर्मोत्सुकता एवं पावनता प्रदान करता है उन्हीं सत्पुरुषों में एक जो चारित्रजीवन परमसाध के पावन पुजारी तथा सत्य के सच्चे साधक बन रहे उन्हीं की जीवनलीला का सार संक्षिप्त रूप आज हम यहां प्रस्तुत करता हैं।

---

(२)

उदय

इतिहास के जानकार मरुधरा की राजधानी जोधपुर नगर से अपरिचित नहीं होंगे। रणबाका राठौर के इस धर्मप्राण महानगर ने उत्थान और पतन के जितने चित्र देखे, उदय और अस्त के जितने इतिहास देखे तथा चढाव और उतार के जितने खेल देखे, सम्भव अन्य किसी नगर को उतना देखने को कदाचित् ही मिला होगा। भारत के पश्चिमी द्वार का यह प्रखर प्रहरी सदा से मुसीबतों और उलझनों का शिकार बनता ही रहा। पछवैया के न सिर्फ लू भरे गरम झोंके ही इसे लगते रहे, वरन् आक्रमणकारियों के सर-दर्द बढाने वाले, सरगर्म मुकाबिलों का सदा सामना भी जी खोल कर इसे करना पडा। विकट से विकट चोट या मार सहकर भी यह न तो कभी धर्म विमुख ही हुआ और न शान एव आन पर इसने आंच ही आने दी।

यहा के प्रत्येक शिलाखण्डों में धर्म पर, देश-भक्ति पर, बलि-बलि जाने वाले वीरों की जाज्वल्यमयी स्मृतिया अकित हैं। जर्रे-

नर्रे और चप्पे-चप्पे में रणवीर शूरमाओं का बहादुराना इतिहास बिखरा है। जिनसे आज भी कोई वीरता, धीरता और धार्मिकता की प्रेरणा पाकर अपने जीवन को समुन्नत और सफल बना सकता है। चोटें सहकर भी धर्म के मर्म को नहीं भूलना प्रलोभनों से भी पराङ्मुख न होना और आपदाओं एवं कठिनाइयों के आगे कभी भी सिर न टेकना यह यहां का प्रकृतिगत धर्म है, जो इतने व्यक्त-पुरुष के बावजूद आज भी यहां के निवासियों में थोड़ी बहुत मात्रा में पाया जाता है।

इतिहास का काम हेयोपादेय का चरित्र चित्रण करना और हमारा काम उनसे प्रेरणा प्राप्त करनी है। जिनका जीवन काले करनामों से ओत-प्रोत तथा लोक समाज से तिरस्कृत है हमें अपने जीवन को सदा इनसे अलग रूप में गढ़ने की प्रेरणा इतिहास से प्राप्त करनी चाहिए तथा जन-समुदाय में जो जीवन सदा सत्कृत और आदृत रहा प्रयत्नपूर्वक हमको वैसा अपना को बनाना चाहिए।

राम रावण कौरव पाण्डव कंस और कृष्ण की कहानियाँ इन्हीं दो विरोधी भावों के प्रतीक हैं। एक का इतिहास आचरणात्मक और दूसरे का निषेधात्मक है। आदर्श और अनादर्शों का जीता जागता शब्द रूप ही तो वास्तव में इतिहास है। जिनसे हम में स्फूर्ति एवं ग्लानि का प्रादुर्भाव होता है। आदर्शमय प्रतीकों से हम स्फूर्तिमयी प्रेरणा ग्रहण कर जीवन को उसी सांचे में ढालने की कोशिश करते हैं और अनादर्शों या दुरादर्शों से नफरत और ग्लानि के भाव उदित होकर उनसे बचने की चेष्टा रखते हैं।

प्रेरणा के लिए व्यक्ति व उसकी विशेषता, जन्मस्थान एव उनके समस्त आचरण अत्यन्त अपेक्षित होते हैं। राणा प्रताप की वहादुरी पर गर्व करते हुए हमें आरावली की घाटियों को भी ध्यान में रखने होंगे ? जैसे त्यागवीरों की कहानियां हम में जिन्दादिली और परमार्थ भावना की वृद्धि करती है, वैसे उनके जन्म एव क्रीडास्थल भी हमारे जीवन के नव-निर्माण में सच्चे सहायक और उत्साहप्रेरक सिद्ध होते है। अतएव इतिहासकार अतीत कालीन प्रत्येक वस्तु का व्योरा यथार्थ रूप में समाज के सामने रखता है, जिससे समाज समुचित लाभ उठा सके।

ऐसी प्रेरणामयी धर्म-प्राण ऐतिहासिक नगरी जोधपुर में सन् १६१४ की कार्तिक शुक्ल सौभाग्य पचमी को साडों की पोल में, सेठ भगवानदासजी छाजेड़ ओसवाल वशोत्पन्न एक सद्-गृहस्थ के घर, उनकी पत्नी पार्वतीवाई की कुक्षि से एक वालक पैदा हुआ।

यों तो जन्म और मृत्यु ससार का एक अटल घटना-चक्र है। रोज यहा हजारों जन्म लेते और हजारों मौत की गोदी भरते रहते हैं। किसी को खबर भी नहीं हो पाती कि कौन कव कहां आया और कौन कव कहां गया। मगर प्रत्येक मा वाप एव उसके सगे सम्बन्धियों को तो जन्म और मृत्यु पर खुशी और गम का होना स्वाभाविक ही है।

यद्यपि पार्वतीबाई को पहले भी एक लड़का हो चुका था, जिनका नाम गुलाबचन्द था। किन्तु इस बालक की उत्पत्ति से मा

का हृदय विशेष खुशी से भर गया। जो खुशी गणेश जन्म से पार्वती को नहीं हुई होगी, उससे भी बढ़ कर खुशी इस बालक जन्म से पार्वतीबाई को हुई।

बालक अपने माँ बाप को तो सहज प्रिय लगता ही है किन्तु पुण्यवान् बालक एक बार शत्रु के मन को भी मोह लेता है। तदनुसार जिस किसी ने एक बार इस नव-जात शिशु को देखा मन्त्र मुग्ध की तरह अति मुग्ध बन गया। सद्य खिले फूल के समान विहँसता मुख बरबस चुम्बक की तरह दिल को खींच सा लेता था। एक बार शिशु-मुख पर पड़ी आंख सहसा हटने का नाम नहीं लेती थी।

वैसे तो प्रत्येक बच्चे की सूरत सलोनी और सुभावनी होती ही है मगर उनमें भी जो होनहार होते हैं उनमें जन्म से ही विलक्षण लक्षण पाए जाते हैं। कहा भी है कि—

होनहार बिरवान के होत चीकने पात।

---

(३)

नामकरण

बालक जन्म से स्वस्थ, हसमुख और सुन्दर था। मुख-मण्डल की शोभा पूर्ण चन्द्र के समान आह्लादक और हृदय-हारक थी। सौभाग्य पचमी जैसी पुण्य तिथि में जन्म होने और जननी-जनक के हृदयाम्बर पर नवोदित शिशु चन्द्र की तरह शोभा बढाने के कारण बालक का नाम भी शोभाचन्द्र ही रक्खा गया। नामकरण की उस घडी मे किसको पता था कि यही शोभाचन्द्र आगे चल कर जन-गण-मन-गगन का वास्तव में सौभाग्यचन्द्र बन जायेगा? भक्त जनों का चित्त-चकोर सदा जिसके पावन दर्शन के लिए आकुल-व्याकुल बना रहेगा? जिसकी उपदेश कौमुदी भक्त-जगत को मुखरित करेगी और अज्ञान तिमिर को दूर करने में सर्वथा सफल और सबल सिद्ध होगी।

माता पिता के असीम स्नेह रस से पलता हुआ शिशु शोभा-चन्द्र शुक्ल पक्ष के चन्द्र की तरह प्रत्यह विकासोन्मुख होने लगा। इधर माता पिता भी प्रफुल्ल-वदन शिशु को देख-देख विविध आशा और मनोरथों से अपने कल्पना उद्यान को सजाने लग गए। परिवार भर का हर्ष पारावार आशा ज्वार की जोरों से नित्य प्रति घहराने लगा।

४

शैशव

बाल्यकाल प्रायः सबका चंचलता और नटखटपन से भरा होता है। जिज्ञासा की भावना जितनी इस काल में अधिक होती और ज्ञान की वृद्धि जितनी इस क्रम से होती है, वह आगे उतनी नहीं हो पाती।

माँ की मोद भरी गोद और पुलक भरे पालने को छोड़ने के बाद जब शिशु प्रथम प्रथम धरती पर उतरता है तब से लेकर किशोरावस्था तक वह जितना व्यवहारवस्तु एवं शब्द-ज्ञान कोष का संचय कर लेता है—उसकी यदि तालिका बनाई जाय तो विस्मय विमुग्ध बन जाना पड़ेगा। प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ लोक-व्यवहार की भाषा, अनेक विध पशु-पक्षियों के नाम व गुण का परिचय, सगे सम्बन्धियों की पहचान और अक्षर-ज्ञान से लेकर उच्च ज्ञान तक की सीढ़ी पर चढ़ने का भगीरथ प्रयास आदि सारे कार्य वह इसी अवस्था में करता है। कहावत है कि—'बचपन की कसरत पर, इसरत भरा जीवन है।" अर्थात् हमारे

लालसा भरे जीवन की सिद्धि बाल्यकाल के कर्त्तव्य पर ही अवलम्बित है। बचपन में हमारी जैसी इच्छा और भावना होती है तथा जिस मार्ग का हम अवलम्बन करते है, हमारे जीवन की वही आधारशिला या नींव बन जाती है। जीवन की इमारत इसी नींव पर टिकी रहती है।

बालक शोभाचन्द्र में बाल्य सुलभ चचलता से अधिक गंभीरता पायी जाती थी। लोक-जीवन की प्रत्येक वस्तु का सूक्ष्म निरीक्षण करना, जनसम्पर्क या भीड के बनिस्बत एकात को अधिक पसन्द करना, हसी खुशी और खेल कूद के समय भी कर्त्तव्य का खयाल रखना और जल्दी खेल से अलग हो जाना तथा भूलकर भी झूठ न बोलना और न शरारती लडकों की सगति करना आदि शोभा के व्यवहार उनके बडे भाई गुलाबचद को अच्छा नहीं लगता था। उनकी दृष्टि में ये सारे लक्षण मोटीबुद्धि वालों के थे जिन्हें वे अपने अनुज में देखना नहीं चाहते थे।

इस बीच आपके घर एक बहिन भी पैदा हुई। उसका नाम सरदार कुवर था। बालक शोभा जिसे जान से अधिक मानते और उसके लाड प्यार से अपना मन बहलाया करते थे। सरदार कुवर बाई भी अपने भाई से बहुत मिलीजुली और प्रसन्न रहती थी। इस प्रकार बाल बच्चों को प्रसन्नता से भरा देखकर मा बाप की खुशी का कोई ठिकाना न था।

---

(५)

पाठशाला में

भारतीय परम्परा में पांच वर्ष की उम्र होते ही बच्चों को पाठशाला में भेजना आवश्यक और अनिवार्य माना जाता है। आगे चलकर बालक चाहे महामूर्ख ही क्यों न निकले, लेकिन पांचवां वर्ष लगते ही प्रत्येक मां बाप अपने बच्चे को एक बार उस ज्ञान मन्दिर में स्थापित कर ही देता है।

बालक शोभाचन्द्रजी को भी इस अटल नियम के मुताबिक पाठशाला में दाखिल कर दिया गया। आपकी मेधा व स्मरण शक्ति अच्छी थी, किन्तु विद्यार्थी कीड़े बनने की भावना आपमें उतनी अधिक नहीं थी। इसलिए पाठशाला की तोतारटन्त में आपका मन प्रसन्न नहीं रहता था। दूसरा, छोटे २ बच्चों के सहस्र सहस्र कोलाहल में आपको भी घबराहट रहती थी और आपकी दृष्टि में पाठशाला एक चिड़ियाखाना या अजायबघर के समान था। आप अक्सर स्कूल में भी मौन और उदासीन ही रहा करते थे। इस चुप्पी का फायदा साथी लोग एकतरफा हास्य मजाक और

छेडछाड के द्वारा उठाया करते थे। यदा कदा शिक्षकों की झिड़की भी आपको सहन करनी पडती थी।

छात्र जीवन की ऐब और शरारतों से आपको सख्त घृणा थी। झूठ बोलना चुगली शिकायत करना, या किसी की कोई चीज चुराना अथवा गाली गलौज करना आपको कतई पसन्द नहीं था। और न ऐसा करने वालों के सग आपका मेल ही हो सकता था। अतएव स्कूल में न तो आपका कोई दल था और न आप किसी दल विशेष के ही बन पाते थे। छात्र समाज में प्राय धाख उसी की रहती है जो पढने से भी अधिक शरारत और शैतानियत में अधिक हिस्सा लेता है। निसर्ग से आपको यह गुण मिला ही न था।

शिक्षकों ने जब आपके स्वभाव का पता पा लिया तो वे आप पर प्रसन्न रहने लगे। सबके सब आपकी सच्चाई और ईमानदारी में विश्वास करते। स्कूल में उठने वाले छात्रों के कलह कोलाहल मे आपके मत का महत्व अन्य छात्रों की अपेक्षा अधिक दिया जाता था। यह सब होते हुए भी आपका मन स्कूली जीवन से प्रसन्न और खुश नहीं था, यह बात स्पष्ट थी।

बड़े भाई गुलाबचदजी के द्वारा घरवालों को यह खबर बराबर मिलती रहती थी कि शोभा का मन स्कूल में नहीं लगता है। वह अपना पाठ तो पूरा कर देता है किन्तु बराबर खोया २ सा और उदास रहता है। (न तो किसी विद्यार्थी से हसता और न दो बात ही करता है।) जब कोई कुछ पूछता या कहता तो

कुछ मजा सा आता है। भगवानदासजी कभी २ इन बातों से खिन्न भी होते और शोभा को डांट फटकार सुना देते थे। लेकिन माता पार्वती अपने लाल की इस क्रिया से भी सन्तुष्ट ही रहती थी। उसका वात्सल्यभाव कभी भी कम नहीं हो पाया। उसने मार्दव पूर्वक पति को समझाया कि व्यापारी के बच्चे को पढ़ने से कौन अधिक जरूरत पड़ती है, उसे तो उद्योग धन्धों का अच्छा ज्ञान रहना चाहिए।

६

व्यापार की ओर

जैसे कृषकों और मजदूरों को अपने-अपने धन्धे का ज्ञान आवश्यक रहता है। उसके बिना उनकी जीवन-यात्रा कभी सफल नहीं हो सकती, उसीभाति सेठ साहूकारों के बच्चों को भी वाणिज्य व्यवसाय की जानकारी नितान्त अपेक्षित है। पिता ने देखा कि बालक शोभा अब दस साल से ऊपर का हो गया है। स्कूल का प्राथमिक ज्ञान इसने अच्छी तरह प्राप्त कर लिया और आगे पढ़ने की इसकी इच्छा कुछ अधिक प्रतीत नहीं होती। ऐसी स्थिति में अभी से ही इसको व्यापार-धन्धे की ओर लगा दिया जाय तो इससे न केवल इसका ज्ञान ही बढ़ेगा, वरन् इसमें अभी से समाने वाली उदासीनता भी कम पड जायेगी।

यह सोच कर उन्होंने शोभाचन्द्र को एक साधारण धन्धे में लगा दिया। जहां बालक शोभा उन धन्धों को सीखते और शेष समय में धर्म सम्बन्धी पुस्तकें भी पढा करते थे।

मनोयोग पूर्वक ही कोई काम सफल और सिद्ध होता है। जिस काम में आपका मन न लगे, लाख कोशिश करने पर भी उसमें आपको कामयाबी नहीं मिल सकती। प्रवृत्ति, निवृत्ति, त्याग भाव और राग विरागादि समस्त द्वन्द्वों का नियामक मन ही है। इसी की प्रेरणा से हमारी प्रवृत्ति संसार में होती है और "गुड़ चींटी" के न्याय से हम इधर चिपक पड़ते हैं। और यही मन जब इधर से उचट जाता है तो ये सारे प्रिय पदार्थ और प्रमी परिवार जंजाल या भार तुल्य प्रतीत होने लगते हैं। कहा भी है कि—"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयो" अर्थात् मन ही बन्धन और मोक्ष का हेतु है।

जिसका मन संसार से ही उचट गया उसके लिए पाठशाला क्या? व्यापार क्या और प्रिय परिवार क्या? विरक्त व्यक्ति के पास सोना और मिट्टी समान है महल और झोंपड़ी बराबर है घर या बाहर एक रूप है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

जब तक ख्वाहिश दिल में बैठी, तब तक दिलगीरी है बाबा।
जब आशिक मस्त फकीर हुए, फिर क्या दिलगीरी है बाबा॥

बालक श्यामचन्द्र का वही वैरागी मन, पाठशाला की तरह व्यापार में भी गुल खिला नहीं देता था। गृहस्थों की दुनियादारी और उनके प्रपंचात्मक व्यवहारों से भारदा जी सतत उपराम रहता था। किन्तु कोई उपाय भी नजर नहीं आता था कि जिससे शीघ्र इससे दूर भग जांय।

माता पिता की आज्ञा के बाहर चलना भी एक बडा अपराध ही है ऐसी भावना मन में उठती रहती थी। जिन्होंने जन्म से लेकर आज तक पाल पोस कर बडा बनाया, स्नेह रस से अहर्निश सींचा, उनके दिल को तोड कर चुपचाप भग जाना कैसे उचित हो सकता था? दूसरी बात यह भी थी कि इतनी छोटी सी उम्र में, अनदेखी और उलझन भरी दुनिया में जाए तो कहा? रहें तो कहां और जीवन चलाए तो कैसे? यह एक ऐसा प्रश्न था कि बालक शोभा के लिए इसका उत्तर ढू ढ निकालना बड़ा कठिन था। पिंजरे के पक्षी की तरह वह मन मसोस कर दिन बिताए जा रहा था।

इधर कौटुम्बिक-जनों की राय शोभा के उचटे व्यवहारों को देख कर यह दृढ हो चली कि इसको बडे व्यापार में उलझाकर यथा शीघ्र पक्का गृहस्थ बना देना चाहिए। और दुनिया की रगीनी में उतार कर इसके मन को सुव्यवस्थित बना डालना चाहिए। किन्तु आपका विचार इससे सर्वथा विपरीत था। आप सासारिक उलझनों को विप बेल की तरह दूर से ही त्याज्य समझते थे। उसमें उलझना अपने को गहरे गर्त में डालना है यह आपका दृढ विश्वास था। आपकी भावना साधु-सन्तो की ओर झुक सी गई थी। जहा कहीं भी धर्म चर्चा होती, आपका हृदय प्रसन्न हो जाता था। किताबों में भी जब कभी त्यागियों की त्याग कथाएं पढ़ने को मिलतीं आपका हृदय खुशी से भर जाता। लेकिन सन्त दर्शन का अथवा उन तक अपनी भावना प्रगट् करने का कोई सुन्दर सयोग अभी तक आपके हाथ नहीं आया था।

७

सुप्रभात

रात्रि के भयंकर अन्धकार से व्याकुल होकर जब विश्व संसार के मनोहर दृश्यों को देखने के लिए लालायित हो उठता है। जब करवट पर करवट बदलते तन मन थक जाता और एक गहरी उदासी दिल पर व्याप्त हो जाती है, तब मलय समीर के शीतल सिहरन से जगत को स्पन्दित करते हुए प्राची के भव्य भाल पर सुप्रभात का शुभागमन तन मन को पुलकित बनाने और एक अनिर्वचनीय प्रसन्नता प्रदान करने का कारण बन जाता है।

जगत में सुप्रभात एक अजीब आकर्षण और एक नया रंग ला देता है। प्रकृति के कण २ में नव जागरण और उत्थान की विद्युत् चमक उठती है। अलसाए हृत्तंत्री के नीरव-तार-मधुर झंकार से भर उठते हैं। एक अदम्य उत्साह और अपूर्व उल्लास से जागतिक-जीवों का अलसाया अकुलाया मन मुखरित हो उठता है। प्रस्फुटित-पुष्प-पराग से वातावरण में एक मस्ती और मादकता छा जाती है और विटपाश्रित नीड़ों में विहगावलियों के कलकूजन

से एक नयी हलचल सी मच जाती है। कर्मण्यता और सक्रियता की लहर प्रत्येक प्राणी में हिलोरे भरने लगती है—ससार के सारे सुप्त उद्योग धन्धे एक नयी उमग के सग फिर से चल पडते हैं। जीवन में एक नया अध्याय, एक नया परिच्छेद और एक नये उल्लास का श्रीगणेश इसी प्रभात के साथ प्रारम्भ होता है।

बालक शोभाचन्द्र जिस समय सासारिक उलझनों से मुक्त होने के लिए मन ही मन सकल्प और विकल्प के ताने बुन रहे थे, मोह और माया से पिण्ड छुड़ाने की उधेडबुन कर रहे थे—सौभाग्यवश उन्हीं दिनों जोधपुर नगर में जैनाचार्य पूज्य श्री कजोडीमलजी महाराज का शुभागमन हुआ। पूज्य श्री के दर्शनार्थ भक्ति-विह्वल हजारों नर नारी की मेदिनी उमड पड़ी। बालक शोभा भी उनमें आया हुआ था। आचार्य श्री ने उपस्थित लोगों को मानव जीवन का परम कर्त्तव्य एव ससार की असारता पर एक सार गर्भित उपदेश सुनाया।

उन्होंने कहा—

"नदन की नव रही बीसल की वीस रही,
रावण की सब रही पीछे पछताओगे,
उतते न लाये साथ, इतते न चले साथ,
इतही की जोरी तोरी इतही गमाओगे।
हेम चीर घोड़ा हाथी, काहु के न चले साथी,
वाट के वटाउ जैसे कल ही उठ जाओगे,
कहत है 'छाजूकुमार' सुन हो माया के यार,
वधी मुट्ठी आये थे पसार हाथ जाओगे॥

भव्यप्राणो ! ऐसी करणी करो ताकि खाली हाथ नहीं जाना पड़े।

न जाने इस संतवाणी का प्रभाव किस पर किस रूप में पड़ा ! लेकिन बालक शोभाचन्द्र ने तो इस उपदेश वाक्य को एक अमूल्य निधि के रूप में ग्रहण किया। जीवन में यह प्रथम अवसर था जब वह इतना अधिक प्रसन्न हुआ जितना कि एक अन्धा नयन पाकर एवं बधिर श्रवण शक्ति पाकर होता है। उसकी आँखें खुल गईं और मनोभूमि में चिरकाल से पड़े वैराग्य बीज अंकुरित हो उठे।

अब बालक शोभा को इस संसार में कोई ममत्व और आकर्षण की वस्तु प्रतीत नहीं होती थी। माता पिता भाई बन्धु सबसे उसका दिल टूट सा गया। उसकी अन्तरात्मा इस बात के लिए छटपटाने लग गई कि कब इन संतों की तरह मोह ममता रहित आदर्श जीवन यापन कर सकूं ? व्यापार के काम काज से अवसर निकाल वह प्रतिदिन संतों की संगति में आकर धर्माभ्यास करने लग गया। शोभा के शील, स्वभाव प्रेम और धर्मलगन ने संतों को भी प्रभावित किया और उन लोगों ने भी प्रसन्नतापूर्वक हृदय से बालक शोभाचन्द्र को धर्मध्यान और ज्ञान ध्यान की बातें सिखानी शुरू कर दीं।

जब तक संत समुदाय यहां विराजे रहे, शोभाचन्द्र अभ्यासक्रम निरन्तर चलता रहा। दृढ संकल्प, नि एवं अटूट लगन के कारण थोड़े ही दिनों में इसे अच्छा बोध हो गया। लेकिन व्यापार की उलझन सिर अब सताने लग गयी थी। जो कुछ भी मन ग

वह अरुचि में पलट गया। धार्मिक अभ्यास के मार्ग मे यह व्यापार व्यवसाय रोडे की तरह खटक रहा था और निरन्तर इस बात की चिन्ता शोभाचन्द्र के शान्त चित्त को अशान्त और चिन्तित बनाए जा रही थी। वह दूकान पर रहकर भी व्यापार की ओर से सर्वथा उदासीन बनता जा रहा था। सतत् धार्मिक पुस्तकों मे आख गड़ाए और उनकी अच्छी बातों को अभ्यास करते वह अपना समय काट रहा था। अब न तो उसे ग्राहकों की ओर न विकवाली की ही फिक्र थी। उसके इस व्यवहार और गुप्त व्यापार की सारी खबर घर के लोगों को यथा समय मिल रही थी जिससे शोभा भी अपरिचित नहीं था।

८

कुहेलिका

कभी कभी प्रभात की छटा निखरते ही उस पर एक धुंधली सी छाया फैल जाती है और देखते-देखते आँखों के आगे फैला हुआ संसार एवं उसकी तमाम सामग्रियाँ एक घने अन्धकार में विलीन हो जाती हैं। इस दृश्य परिवर्तन से हृदय को कुछ क्षण के लिए एक बड़ी ठेस सी लगती है। लेकिन इसका प्रभाव चिर स्थायी नहीं होता। अति शीघ्र प्राची के मध्य-भाल पर भगवान भास्कर अरुण राग-रंजित-रश्मियों की राशि से युक्त गोल बिन्दी के रूप में आ उभरते हैं। सारी कुहेलिका मिट जाती और वातावरण पुन: पूर्ण उद्भासित हो उठता है।

एक दिन शोभाचन्द्रजी अपने घर पर कुछ धार्मिक क्रिया में ध्यान मग्न थे। इतने में पिताजी वहाँ पहुँच गए। उन्होंने आते ही कहा—अरे! तुम्हें क्या हो गया है? जब देखता हूँ सतत धर्माभ्यास में ही तल्लीन रहते हो? क्या इसी से दुनियादारी चलेगी? पढ़ने में तुम्हारा मन नहीं लगा? दुकान की भी यही बात है? फिर कैसे काम चलेगा? क्या धर्म से पेट भरेगा?

शोभा ने शान्त भाव में जवाब दिया कि—क्या करू ? जब मन ही नहीं मानता फिर उस काम को कैसे करू ?

पिता—तो तुम्हारा मन क्या मानता है—साफ-साफ क्यों नहीं कहते हो ? अगर ठीक हो तो वही करना वर्ना मन को बदलने का प्रयास करना।

शोभा ने हाथ जोडकर कहा कि—पिताजी ! मैं साधु बनना चाहता हूँ। अगर आप आज्ञा देवे तो मेरा जन्म और जीवन सफल हो जाय ?

पिता—अरे ! किसने तेरे माथे को खराब कर दिया है ? इस छोटी उम्र में और साधु बनने की भावना ? क्या तुम पागल तो नहीं हो गए हो। देखो बहकी बातें न किया करो, धर्म का अभ्यास करो—धार्मिक बनो कुछ हर्ज नहीं। लेकिन साधु बनने की बात फिर कभी भूल कर भी मुह से न निकालना। क्या साधुता कोई खेल-कूद और मनोरजन की वस्तु है जिसे लेने की लालसा तुम्हारे मन में जग उठी है।

शोभा ने कहा—चाहे जो भी हो मगर मैं बनूगा तो साधु ही। मेरा मन इस सासारिक बन्धों में कतई नहीं लगता। फिर व्यर्थ इसमें माथा पच्ची करना मुझे योग्य और उचित नहीं जचता।

इस पर पिता ने कहा—बेटा ! साधुता का पालन यों ही कोई सरल और आसान वस्तु नहीं है। उसमे भी जैन साधु बनना और उसे निभाना तो और भी महा मुश्किल और टेढा काम है। बडे-बडे शूर दिल भी जैन साधुता की झाकी से ही सिहर जाते हैं। जो भयकर लडाई की लोमहर्षक घड़ियों में भी नहीं घबराता

अमन्द्र घन गर्जन की तरह भयंकर तोप गर्जन और भीषण हाहाकार में भी जो स्थिर और शान्त मना रहता, सनसनाती गोलियों के बीच भी जो भयाक्रान्त और उद्विग्न नहीं हो पाता, वैसे साहसी और बहादुर लोगों को भी इस मार्ग में हिम्मत हारते और घबराते देखा गया है। कांटों का राही बनना और मंजिल की तरफ कदम बढ़ाते चलना हर लोगों के वश की बात नहीं है। तुम अभी बच्चे हो, ऐसी बेढब और बढंगी बातें न किया करो। ऐसी ही बातें बोलो और ऐसे ही काम करो जो तुम्हारे लायक हों। ये तो बड़े बूढ़ों की बातें हैं। ऐसी बातें तुम्हें शोभा नहीं देतीं।

शोभा ने कहा—आपको कैसे और किस भांति कहूँ यह समझ में नहीं आता। परन्तु जो कुछ भी निश्चय कर चुका हूँ अब उससे मुड़ना पीछे हटना मेरे वश की बात नहीं है।

इसी बीच में माताजी भी उपस्थित हो गयी और उन्होंने भी हर तरह से समझाया किन्तु शोभा के विचार नहीं बदले। आखिर उन लोगों ने कहा आगे देखा जायगा। अभी तो तुम्हारी अवस्था भी छोटी है और तुम्हारा अभ्यास भी अधिक नहीं है। इसलिए अभी अपना काम देखो जब समय आएगा तो जैसा उचित होगा किया जायगा।

शोभा ने कहा—आप सब हमारे जीवनदाता हैं अब जिससे यह जीवन सफल हो यह प्रयत्न भी आप लोगों को ही करना चाहिए। सन्तान के प्रति प्रेम और ममता माता पिता में होती है वह अन्यत्र कहाँ सम्भव है। सन्तान का कल्याण सोचना भी प्रत्येक माता पिता का निसर्ग स्वभाव और धर्म है।

६

अरुणोदय

महापुरुषों का जीवन साधारण मनुष्यों की तरह ढीलाढाला और पोलवाला नहीं होता। बाल्यकाल से ही उनके सयत और नियमबद्ध कार्यक्रम होते हैं। उनका कोई भी काम अनुशासन से बाहर नहीं होता। नियमों और पाबन्दियों में वे अपने को इस तरह से बाध लेते हैं कि प्रमाद या त्रुटियों के लिए उसमें कोई अवसर एव गुन्जाईश ही न रहे।

हम बिना प्रतिज्ञा और करार के भी किसी व्रत या नियम का पालन कर सकते हैं। बिना सकल्प और धारणा दर्शाए भी हम सुकार्य सम्पादन कर सकते हैं। मगर उस काम में वह खूबसूरती और सुघडता नहीं रहती जो सकल्प या पाबन्दीपूर्वक किए कामों में रहती है। नियमपूर्वक किए जाने वाले प्रत्येक कार्य का महत्व और गौरव कुछ और ही होता है।

माता पिता की बातें सुनने के बाद शोभा आचार्य श्री के पास आए और उन्हें सारी बातें कह दीं। साथ ही यह भी निवेदन किया कि प्रभो! आप जैसे महान् पुरुषों से कुछ कहूँ यह तो

मुझे ठीक नहीं मालूम देता किन्तु अब चुप रहने से भी काम चलने वाला नहीं है। मुझे जल्द वह रास्ता दिखा दीजिए तथा आदेश दीजिए कि जिससे यथाशीघ्र मैं भी भगवती दीक्षा की शरण ग्रहण कर अपने जीवन को सफल बनाऊ।

इस पर आचार्य श्री ने कहा कि सभी यदि साधु ही बन जांय तो यह संसार कैसे चलेगा? घर-गृहस्थी की सार-संभाल कौन करेगा? धर्माभ्यास बढ़ाओ—माता पिता का सेवा करो—साधु सन्तों में श्रद्धा रक्खो और सत्य-मार्ग पर चलो तुम्हारा बेड़ा पार है। साधुता कोई फूलों की माला नहीं जो हर कोई उसे पहन ले। यह तो जलता हुआ अंगार या तलवार की तीक्ष्ण धार है जिस छूना कोई साधारण बात नहीं है। कबीर ने ठीक ही कहा है कि— 'कबिरा खड़ा बाजार म लिए लुकटी हाथ, जो घर जारे आपना चले हमारे साथ'। मोह ममता सुख आनन्द, ऐश, मौज कुटुम्ब परिवार आदि सब दुनियावी सुख-साधनों से मुह मोड़ने वाला अपनी हथेली पर अपना सर रख कर चलने वाला ही सच्चा साधु कहा सकता है। अच्छा! अभी तुमको इसके लिए साधन करना चाहिए।

मगर शोभा की आत्मा को इससे शान्ति नहीं मिली। बल्कि घर से तो वह ऐसी बात सुन के ही आया था—यहां भी ठीक उसी तरह की सुन कर वह बहुत उदास और खिन्न बन गया। उसकी आँखों से अश्रुधारा बह चली। किसी तरह दिल को स्थिर कर, हाथ जोड़ बोला कि किसी के लिए इस संसार का कोई काम नहीं अटकता—सारा व्यापार चलता ही रहता है और चलता ही

रहेगा फिर मुझे मेरी भावना से अलग होने का उपदेश क्यों दिया जा रहा है ?

आचार्य श्री ने कहा–जल्दबाजी में किया हुआ काम पीछे दु खदायी बन जाता है। उस पर भी तुम्हारे माता पिता हैं और उनकी आज्ञा तुम्हें साधु नहीं बनाने की है। फिर मां बाप की आज्ञा पालन भी तो पुत्र का प्रथम कर्त्तव्य और धर्म है।

किन्तु शोभाचन्द्र का मन बहुत ऊ चा उठ गया था। व्यवधान, विक्षेपकारक तर्क और दलीलों के लिए उसके दिल में अब कोई जगह नहीं रह गई थी। घडी और क्षण भर की देर भी उसे कल्प से लम्बी प्रतीत होती थी। साधुता उसके मन प्राणों में समा गई थी—गृहस्थों का ससार जिसमें कि वह आज तक पला था, भयानक विषधर की तरह डरावना मालूम पड रहा था। वह नहीं चाहता था कि गुरुदेव इस शुभ काम में अनावश्यक विलम्ब करें।

आचार्य श्री को शोभाचन्द्र के अकुलाए दिल की खबर या पता न हो, ऐसी बात नहीं थी। वे अच्छी तरह जानते थे कि आगे चलकर यह न केवल साधु परम्परा ही निभाएगा वरन् अपने विमल आचरण से धर्म और सम्प्रदाय का मुख भी उज्ज्वल करेगा। फिर भी उनका विचार था कि यह साधुता से पूर्ण परिचित हो जाय और यही कारण था कि वे इस काम में टालम-टोल करते जा रहे थे।

पूज्य श्री ने विविध प्रबोध पूर्ण उपदेशों से उसके दुखी और अशान्त हृदय को शान्त कर, उसे धार्मिक अभ्यास बढाने एव उचित अवसर की प्रतीक्षा करने को कहा।

१०

निर्मल प्रकाश

गुरुवाणी पर प्रबल विश्वास रखकर शोभाचन्द्रजी ने अपना धर्माभ्यास खूब बढ़ाया। निरन्तर शास्त्रों एवं धर्म सूक्तियों का वाचन गुरूपदेश श्रवण और त्याग विरागपूर्ण आचरण से आपका हृदय निर्मल बन गया और रहा सहा परिवार एवं संसार प्रेम भी कपूर की तरह उड़ गया। आपकी एकमात्र आकांक्षा सांसारिक प्रपंचों से दूर होने की हो गई। मां बाप और बन्धु बांधवों ने भी भर समझाया और साधुता के कष्ट तथा गृहस्थाश्रम के सुख प्रसाधनों से भी परिचित कराया। मगर शोभाचन्द्र के दिल में इन सब की कोई भी बात असरदायक नहीं हुई। पानी की लकीर तरह वे सभी व्यर्थ साबित हुए।

शोभाचन्द्र ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि आप लोग चाहे जितना भी कहिए किन्तु अब मेरे मन में साधुता के सिवा और कोई दूसरी बात स्थान नहीं पा सकती। जिसी प्रेम के वशी भूत होकर आपको सांसारिक व्यापार पसंद आरहा है वही प्रेम मुझे इनसे

अलग साधुता की ओर खींच रहा है। दोनो तरफ प्रेम का ही प्रभाव है लेकिन विषय इनके अलग २ है। मुझे दु ख है कि मैं अपने माता पिता की सेवा चिरकाल तक नहीं कर पाया। किन्तु जिस रास्ते पर मैं जाना चाहता हूँ, उस पर भेजने में मेरे मां बाप का भी अमित उपकार होकर रहेगा।

पारिवारिक और कौटुम्बिक जनो ने खूब हिलाया डुलाया परन्तु यह दृढ़मति बालक घड़ी भर के लिए भी अपनी धारणा से दूर नहीं हुआ। निदान सबने कहना सुनना छोड़ दिया। मगर माता का हृदय ममता से भरा होता है। वह अपने लाड़ले को इसी किशोर वय में दीक्षा लेने को कैसे आदेश दे सकती थी। फलत उन्हों ने भी मोह का माहात्म्य दिखाते हुए कहा कि बेटा! तुम्हारी उम्र साधु बनने की नहीं हुई है। अभी मन को खूब शान्त और स्थिर बनाओ। दीक्षित होकर जो कुछ भी करोगे उसका अभ्यास घर रह कर ही करो। दीक्षा लेनी कोई बडी बात नहीं है उसकी साधना और पालना कठिन है। आज की तरह कल कहीं साधुता से भी मन उचट गया तो वह बहुत बेजा होगा। कामदेव आदि कई श्रावकों ने तो घर रह कर ही धर्म की सच्ची सेवा की और उसका सुफल पाया है। क्या तुम ऐसा नहीं कर सकते ?

नहीं मुझसे ऐसा नहीं हो सकता-शोभाचन्द्र ने कहा। मा मेरा मन इस पारिवारिक दलदल में घड़ी भर के लिए भी अब फसना नहीं चाहता। क्या करू ? कोई भी काम मन की प्रसन्नता के लिए

ही तो किया जाता है। अब मन ही इसे नहीं चाहता तो मेरी लाचारी पर क्षमा करो। मुझे सहर्ष साधुता स्वीकार करने की आज्ञा दो। माँ तो सतत् पुत्र का कल्याण चाहती है फिर तुम मर मन के प्रतिकूल यहाँ रोक कर मेरा अकल्याण कैसे करोगी? कहा भी है कि 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति" अर्थात् पुत्र कुपुत्र हो सकता है मगर माता कभी भी कुमाता नहीं बनती।

किसको पता था कि एक सद्गृहस्थ का किशोर वय बालक जिससे माता पिता और परिवार भर को हजारों आकांक्षाएं और आशाएं थी, इस तरह सब का दिल तोड़ कर निकलना चाहेगा? संसार के समस्त सुखसाधनों को लात मार वैराग्य के अलख जगाने की लालसा से आकुल हो उठेगा? जिस मार्ग में पद पद पर कठिनाइयां और रग रग में कष्टों का जाल बिछा है, उस पर कदम बढ़ाने को मचल उठेगा? मगर ठीक ही कहा है—"क ईप्सितार्थ स्थिर निश्चियं मन: पयश्चनिम्नाभिमुखं प्रतीपयेत्"। अर्थात् इष्ट बात में लगे हृदय और नीचे बहते पानी कोई भी लौटाने वाला नहीं है।

शोभाचन्द्र के हृदय में अब सर्वत्र निर्मल प्रकाश फैलगया था। अज्ञान और मोह का अन्धकार भलीभांति मिट चुका था। धर्म और सदाचार की भावना प्रत्येक बात से झलक रही थी। वय छोटी थी लेकिन मन, वचन और कर्म में एकता दृष्टिगोचर हो रही थी।

पता नहीं कि विरक्ति में भी ऐसी कौन जादू की शक्ति है जो सासारिक आसक्ति एव लालसा को सर्वथा समूल नष्ट कर देती है। जिसके सामने जगत् के ये सारे लुभावने रूप, ऐश आराम के साधन, और मनमोहक पदार्थ तुच्छ तथा बेकार प्रतीत होने लगते हैं। ससार के सार कनक और काता भी जिस दृष्टि के आगे असार मालूम होते हैं उस विरक्ति की महिमा अपार है।

११

साधुता की ओर

शोभाचन्द्र बारम्बार पूज्य कजोड़ीमलजी महाराज को अपनी दीक्षा के लिए प्रार्थना करता तथा शीघ्रता के लिए आग्रह करता था। महाराज भी यथा सम्भव उसके हृदय को समझा-बुझाकर स्थिर और शान्त कर देते थे। एक दिन शोभाचन्द्र के उसी दीक्षा विषयक आग्रह पर आचार्य श्री ने कहा कि—शोभा! तुम अभी-अभी दीक्षा की दुहाई दे रहे हो—लेकिन क्या तुम्हें कुछ भी मालूम है कि यह संसार कैसी विचित्रताओं और आकर्षण की सामग्रियों से भरा है। जिसकी प्रत्येक वस्तु और रूप पद-पद में तुम्हें चक्कर में डालेगा और हर घड़ी अपनी ओर खींचने का प्रयास करेगा। रूप, रस, गंध, श्रवण और स्पर्शेन्द्रियों के उन्मादी प्रभाव से मन सतत् चलदल की तरह चंचलता का अनुभव करेगा। मायामयी प्रकृति की सलोनी और मधुर छबि बरबस तुम्हें अपनी ओर खींचेगी और विविध लालसाओं की लहरें तुम्हारे शान्त मानस को अशान्त और उद्वेलित बनायेंगी। क्या इस मन्दिर

मधुर वातावरण में तुम अपने मन को मजबूत रख सकोगे ? और प्रतिक्षण आने वाली बाधाओं पर विजय प्राप्त कर सकोगे ?

बडी-बडी अवस्था और उच्च-ज्ञान-ध्यानसम्पन्न लोग भी जहा इस बीहड दुर्गम पथ पर निर्बल और अशक्त साबित हो चुके हैं, ऐसे कण्टकाकीर्ण मार्ग पर, सयम और साधना के पथ पर तुम्हें पूर्ण स्थिरता से चलना होगा। क्या तुमने अपने मन को बराबर तोल लिया है ? सारी बातों को अच्छी तरह ध्यान में रख लिया है ? ये ही कुछ प्रश्न तुम्हारे दीक्षा विरोध में टेढापन लिए मेरे सामने उपस्थित हो रहे हैं ? खूब अच्छी तरह तुम इन बातों पर विचार कर मजबूती के साथ आगे कदम बढाओ।

आचार्य श्री की गुरु-गम्भीर बातों को सुन कर शोभा का दिल भर आया और डबडबायी आखों से मोती की तरह दो दाने आसू के बाहर निकल आए। वह हाथ जोड कर बोला कि मैं कोई शास्त्रज्ञ और विद्वान् तो नहीं हूँ जो गुरुदेव की आशकाओं का बातों से समुचित समाधान करू। लेकिन आपकी सगति और कृपा से थोडा बहुत जो कुछ भी सीख पाया हूँ उस आधार पर यह कहने की धृष्टता अवश्य कर सकता हूँ कि मनुष्य का उद्धार और पतन उसके वश की बात है। ससार की कोई भी शक्ति उसे कर्त्तव्य पथ से विमुख नहीं कर सकती। जिसकी धारणा दृढ और लगन पक्की है, उसका रास्ता साफ है। आज अथवा कल वह मन चाही मजिल पर पहुँच कर रहेगा। उसमें भी जिसका जैसा सस्कार बालपन में होता है वह जीवन भर अमिट रहता है। चिर-दिनों की साधना अभ्यास के रूप मे बदल कर अपरिवर्तन-

शीघ्र बन जाती है। कहा भी है कि—"यन्नव भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्" सुनता हूँ कि बहुत से अल्पवयस्क बालकों ने भी संयम मार्ग की साधना में सच्ची सफलता हासिल की है।

गुरु कृपा से कुछ असम्भव नहीं। आप जैसे तरण तारण को बहुत कहना उपयुक्त नहीं मालूम पड़ता फिर भी मैं अपनी मन्द भाषा में आप श्री को विश्वास दिलाता हूँ कि साधुता ग्रहण के बाद कभी हमसे ऐसा काम नहीं होगा जो मुनि परम्परा और मर्यादा को आघात पहुँचावे। अब आगे मुझे कुछ कहना नहीं है अब आप अपनी चरण शरण में लें अथवा यों ही भटकने दें। एकलव्य की तरह शिष्य तो मैं अब आपका बन ही गया—भले आप उसे स्वीकार करें या नहीं।

शोभचन्द्र की इन लघु बातों का प्रभाव आचार्य श्री के ऊपर अत्यधिक पड़ा और वे प्रसन्न होकर बोले कि—शोभा! तुम्हारी बातों और क्रियाओं का समुचित समाधान तो भविष्य के हाथ में है मगर मेरे मन के सारे संशय मिट गए और हृदय विश्वस्त हो गया कि तुम कथनी और करनी में सामंजस्य दिखाने वाले बनोगे। अब तुम अपने कुटुम्बीजनों का आज्ञा-पत्र प्राप्त करो—मैं तुम्हें सहयोग देने को तैयार हूँ। सच्ची साधुता मन बस गई और भव भावना नस-नस में सांस-सांस में चक्कर काट रही है तो अब विलम्ब बेकार है। पहले अपने माता पिता को अच्छी तरह समझा बुझाकर, उनकी आत्मा को सन्तुष्ट कर आज्ञा प्राप्त करो—यह तुम्हारी पहली और बड़ी सफलता समझी जायेगी।

———

१२

साधु संस्कार

स० १९२७ का साल रत्नवश के इतिहास में अमर और अमिट बन कर रहेगा। लघुतन और अल्प वय में वृहद् मन के धारक हमारे चरित नायक शोभाचन्द्रजी ने इसी वर्ष साधुता स्वीकार की थी।

आज्ञा प्राप्त करने के प्रयत्न मे बहुत बड़ी अड़चने और बाधाये आयीं किन्तु शोभाचन्द्रजी की दृढ लगन और धारणा के आगे उन सबकी एक भी न चली। हार कर माता पिता ने दीक्षा धारण की आज्ञा दे दी।

एक शुभ मुहूर्त में, उसी जोधपुर नगर मे, जहा शोभाचन्द्रजी के जन्मोत्सव की कभी थालिया बजीं, राग-रग हुआ और त्रिविध आमोद-प्रमोद मनाए गए—जहा की मिट्टी मे आप बार-बार गिरे, उठे और सभल-सभल कर चलना सीखा, जहा ही प्राभातिक सुमनों की तरह परम प्रसन्नता से मुस्कराए और विषाद व्यथा के क्षणों में जारबेजार आखों से आसू बहाए, जहा बचपन मे अपने बाल-

साथियों के संग अनेक विध खेल खेले और पढ़ लिख कर ज्ञान-ध्यान सीख कर इतने बड़े हुए—जहां अनुरक्ति और आसक्ति पर आपकी विरक्ति ने विजय पायी, हजारों नर-नारियों के बीच वहां पर ही एक महोत्सव के रूप में उनका दीक्षोत्सव सम्पन्न हुआ। तेरह वर्ष की अवस्था में आपने आचार्य श्री कजोड़ीमलजी म० के कर-कमलों से साधु दीक्षा स्वीकार की। जोधपुर के आबाल वृद्ध नर-नारियों ने नयन भर इस समारोह को देखा और अपने जीवन को धन्य-धन्य माना। जिस समय शोभाचन्द्रजी साधु वेष में गुरु के समीप उपदेश श्रवण के लिए खड़े हुए वह अनुपम दृश्य और वातावरण कभी भी भुलाने की चीज नहीं है।

१३

दीक्षा के बाद

अक्सर देखा जाता है कि साधु बन जाने के बाद कतिपय साधु निश्चिन्त और कृत्कार्य बन जाते हैं। ज्ञानाभ्यास और सेवा जो साधु जीवन का सबसे महत्वपूर्ण अश है, इसी को बहुत लोग भुला सा देते हैं और साधु जनोचित प्रयास में शिथिल एव ठडे बन जाते हैं। वस्त्र और पात्र का परिमार्जन करना, दोनों शाम गोचरी लाना आवश्यकता हुई तो भक्त-जनों को मागलिक सुनाना अथवा व्रत प्रत्याख्यान कराना बस इसके सिवा और कुछ भी काम नहीं। मानो साधुता का स्वरूप इन्हीं कामों में उट्ट कित समझ लिया जाता है।

फलत' अपेक्षित आवश्यक ज्ञान और प्रशमकारक सेवा-भाव से उन्हें सदा वचित और पश्चात्पद रहना पड़ता है। इस तरह उनका जो ह्रास होता वह तो होता ही है, साथ ही उनके अनुयायियों और भक्त-जनों को भी कुछ कम घाटा उठाना नहीं पडता। गुरु में ज्ञान एव गुरुता की कमी से शिष्यों के धर्म विश्वास और श्रद्धा के

मात्र भी झकझाने से लगते हैं। जिसकी नींव ही कमजोर होगी उसके बल पर टिकने वाली इमारत कब तक कायम रह सकती है। आखिर वही होता है जैसा कि इस स्थिति में होना चाहिए।

आज का युग अन्ध श्रद्धा और गतानुगतिकता पर चलने वाला नहीं रहा। प्रत्येक व्यक्ति हर वस्तु का सुपरीक्षण करके ही उसे स्वीकार करता है। दो पैसे की चीज को भी बहुधा ठोक बजा कर देखा जाता है। अब कोरे ज्ञान से ही काम चलन वाला नहीं। आज तो विज्ञान की गूंज है प्रत्यक्ष की पूजा है और चमत्कार को नमस्कार है। ज्ञान गुण सम्पन्न सदाचरणशील, क्रियापात्र, मधुरभाषी और तर्क विद्या विशारद ही आज के युग में गुरुता का गौरव संभाल सकते हैं। धर्म गुरु का स्थान तो और भी अधिक ऊंचा है। जिन्हें देख कर स्वत सिर झुक चले और अनायास युगल कर जुड़ जाये एवं हृदय में श्रद्धा और भक्ति की भावना उमड़ चले तथा जिनके सन्देश सुनने को मन मचल पड़े वास्तव में वे ही सच्चे गुरु और आराध्य देव हैं। क्या बिना अनवरत परिश्रम और साधना के ऐसा महा महत्वशाली रूप कभी प्राप्त किया जा सकता है? क्या सतत जागरूकता के बिना ऐसा स्थान पाना और उसे निभाना सहज है?

शोभाचन्द्रजी म० इस रहस्य को भलीभांति जानते थे। अत आपने अपने जीवनयापन के दो प्रधान उद्देश्य बना लिए, एक गुरुसेवा और दूसरा ज्ञानाभ्यास।

मानव-जीवन मे इन दोनो का महान् महत्व है। इन्हीं के सहारे मनुष्य पशुता से महा मानवता की ओर क्रमश बढता जाता है। ज्ञानाजनशलाका से अज्ञानान्धकार को मिटा कर दिव्य-चक्षु खोलने वाले पशुता और मानवता के भेद मूलक विचारों से अवगत कराने वाले, गुरुजनों की सेवा यदि सच्चे हृदय से न की जाय तो मनुष्य-जीवन भी एक विडम्बना और बर्बरता एवं पशुता का ही ज्वलन्त प्रतीक है।

इसी तरह ज्ञानोपार्जन की दिशा मे की जाने वाली उपेक्षा भी मानव-जीवन के समस्त सार और माधुर्य को मिटा देती है, उसकी श्रेष्ठता और महत्ता को पद-दलित कर देती है। जीवनयापन का ज्ञान तो एक साधारण पशु पक्षियों में भी है। फिर भला मानव भव की विशेपता क्या ? अगर वह ज्ञान गुण गु फित न हुआ। ज्ञानी पुरुप अपने और पराये कल्याण का मार्ग सहज ही ढ ढ लेता है और कल्याण की दिशा में जीवन को अग्रसर कर निरन्तर बढता चलता है।

मुनि श्री शोभाचन्द्रजी म० ने गुरु सेवा करते हुए शीघ्र ही शास्त्रों का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। आपको दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, नन्दीसूत्र, बृहत्कल्प, सूत्रकृतांग और आवश्यक सूत्र तो कण्ठस्थ हो गए। साथ ही सस्कृत में सारस्वत व्याकरण और शब्दकोप का भी खासा बोध हो गया था। इतना होते हुए भी आपकी अध्ययन लालसा कुण्ठित नहीं हो पायी थी। साधु समुचित व्यवहारो से अवकाश पाकर आप अनवरत अध्ययनरत ही रहा करते थे।

श्रम का परिणाम तो सदैव सुखद और सुन्दर ही हुआ करता है, उसमें भी ज्ञानार्थ श्रम का तो कहना ही क्या ? जो ज्ञानार्जन के हेतु श्रम से जी नहीं चुराता उस पर सदा शारदा की कृपा बनी रहती है। मुनि शोभाचन्द्रजी म० ज्ञानाभ्यास में सतत् दत्त चित्त रहा करते थे। परिणामतः थोड़े ही दिनों में वे एक अच्छे ज्ञाता सन्त बन गए।

१४

गुरु-वियोग

गृहस्थी में जो स्थान पिता का होता है, मुनि जीवन में गुरु का भी वही स्थान है। जैसे पिता की जिन्दगी में पुत्र अलमस्त और निश्चिन्त बना रहता है, वैसे सामान्य साधु अपने गुरु की छत्रछाया में सुखी और निश्चिन्त बने रहते हैं। वस्तुतः गुरु शिष्य समुदाय के लिए वह छायादार और फलवान् वृक्ष है, जिसकी शीतल सुखद छाह में शिष्य जीवन में आने वाली समस्त कठिनाइयां एव तज्जन्य आतप ज्वाल को भूल सा जाता और सदा सदुपदेश के मधुर फलों से आत्म भूख की व्यथा को मिटाते रहता है।

जब कभी देखिए मुनि शोभाचन्द्रजी पूज्य श्री की सेवा में ही मलग्न दिखाई देते। एक अल्पवयस्क साधु की इतनी बडी सेवा भावना और गुरुजनों के प्रति उदार विचार, पूज्य श्री को बराबर विस्मय विमुग्ध बनाए रहता था। पूज्य श्री कहा करते थे कि शोभा कुछ अपने शरीर का भी खयाल रक्खो। "शरीरमाद्य खलु धर्म

साधनम्" श्रथ त् सारी साधना की जड़ यह निरोगी काया ही तो है।

जिसका खयाल गुरुजनों को है उसे अपने खयाल रखने की जरूरत क्या ? बस इस सीधे सादे उत्तर में अपने हृदय का समस्त माधुर्य गुरु की सेवा में उंडेल कर शोभाचन्द्रजी चुप हो जाते थे। पता नहीं गुरुदेव को इससे कितनी बड़ी प्रसन्नता प्राप्त होती होगी लेकिन उनके मुखमण्डल को देख कर स्पष्ट ज्ञात होता कि वे बेहद प्रसन्न हैं।

दिन इसी तरह हंसी-खुशी ज्ञान ध्यान आचार विचार और आहार विहार में कटता जा रहा था। मुनि शोभाचन्द्रजी अपने गृहस्थ जीवन से इस मुनि जीवन में अत्यधिक पुलकित और प्रसन्न रहा करते थे और इसका एकमात्र कारण गुरु-स्नेह एवं उनकी अमिट अनुकम्पा ही थी जो अपने सेवा-भाव से मुनि शोभाचन्द्र ने इन अल्प दिनों में ही अच्छी तरह प्राप्त करली थी।

संसार का अटल नियम है कि—"समागमा सापगमा सर्व मुत्पादि भंगुरम्" अर्थात् संयोग वियोग मूलक है (मिलन के संग जुदाई) और सभी उत्पन्न होने वाला विनाशशील-नश्वर है। संसार का यह नियम राजा रंक ज्ञानी मूर्ख साधु-महात्मा एवं पापात्मा सबके लिए समान रूप से काम करता है। इसके सामने छोटे-बड़े भले-बुरे और बाल-वृद्ध का कोई भेद नहीं है। यह फूलों को तोड़ने के पहले कलियों को ही चुन लेता है। पिता पड़ा ही रहता किशोर कुमार को उठा लेता है। शिशु पर क्या बीतेगी इसकी कुछ परवाह किए बिना स्नेहमयी जननी की जीवन-लीला समाप्त कर देता है। उसके स्थान पर कोई मनुष्य होता तो क्र,

निष्ठुर और महापापी कहलाना, किन्तु इसका तो यही स्वभाव है। इसके लिए न तो कोई उपमा है और न उदाहरण। यह लाइलाज और बेमिसाल है।

कौन जानता था कि युवक मुनि श्री शोभाचन्द्रजी को सहसा गुरु वियोग का अप्रिय अनुभव करना पड़ेगा? आचार्य श्री का १९३३ का चातुर्मास अजमेर था। असाता के उदय से वहां आपको रोग-परिषह समय-समय पर घेरने लगा। व्यवहार मार्ग में कुछ औषधोपचार भी किए गए, परन्तु किसी प्रकार का शान्ति लाभ नहीं हुआ। इसलिए चातुर्मास के बाद भी आपको वहीं ठहरना पड़ा। व्याधि बढती रही, इससे असमर्थ होकर ३४ और ३५ का चातुर्मास भी वहीं करना पड़ा।

१९३६ वैशाख शु० २ को सहसा पूज्य श्री को भयंकर उदर-व्यथा होने लगी। दर्द की भयंकरता से अन्तिम समय समझ कर पूज्य श्री ने आलोचना कर आत्म-शुद्धि की और अक्षय तृतीया के दिन साधु एवं श्रावक संघ के समक्ष विधि पूर्वक आजीवन अनशन स्वीकार कर ऐहिक लीला समाप्त कर गए।

मुनि श्री शोभाचन्द्रजी को गुरु वियोग की चोट तो गहरी पहुँची। किन्तु उन्होंने अपने धैर्य और बोध की परीक्षा समझ कर मन को शान्त किया। शास्त्र-वचनों को याद कर सोचने लगे कि आत्मा तो अजर-अमर है। यद्यपि गुरुदेव शरीर से मेरे सामने नहीं हैं। फिर भी उनकी अमर आत्मा तो सदा सामने ही है। मुझे नश्वर देह के पीछे शोकाकुल होने के बजाय उनके

ममर गुण एवं शिक्षाओं का पालन करना चाहिए। यही मेरे लिए उभयलोक में हितकर है। अब मैं गुरु के स्थान पर बड़े गुरुभाई को समझ कर उनके आदेशानुसार चलूं, बस यही मेरा कर्त्तव्य है। किसी भक्त-हृदय ने ठीक ही कहा है कि—

सुखे दुःखे वैरिणि बन्धु वर्गे, योग वियोग भवनेवनेवा।
निराकृताशेष ममत्व बुद्धे, समं मनो मेऽस्तु सदैव देव।

अर्थात् सुख, दुःख, बन्धु शत्रु, योग, वियोग, भवन, वन, इन सब वस्तुओं पर से सम्पूर्ण ममत्व बुद्धि दूर कर हे प्रभ! सर्वदा सब पर समान भाव मन मेरा बना रहे। सन्त हृदय और साधु मानस का इससे बढ़ कर दूसरा भाव और क्या हो सकता है?

१५

गुरुभाई के संग

स्वर्गीय आचार्य कजोडीमलजी महाराज के बाद सम्प्रदाय का शासन सूत्र श्री विनयचन्द्रजी महाराज ने सभाला। उनके प्रमुख शिष्य होने के नाते आप ही पूज्य पद के अधिकारी बने।

मुनि श्री शोभाचन्द्रजी ने गुरुदेव के स्वर्गवास के बाद करीब २६ वर्ष का समय गुरुभाई पूज्य श्री विनयचन्द्रजी म० के सग विताया। इस वीच में मुश्किल से ही १-२ चातुर्मास भी आपने स्वतन्त्र रूप में किये हों। इतने लम्बे समय का सहवास होने पर भी कभी आपके व्यवहार में कटुता या प्रेम में न्यूनता नहीं आने पायीं। कहा भी है कि—"मृद् घट वत्सुख भेद्यो-दुस्सन्धानश्च दुर्जनो भवति। सुजनस्तु कनकघट वत्-दुर्भेद्यश्चाशुसन्धेय।" अर्थात मिट्टी के घडे की तरह सरलता से फूटने एव मुश्किल से जुटने वाला स्वभाव दुर्जनों का होता है। किन्तु सज्जन तो स्वर्ण घट की तरह होते हैं जो मुश्किल से फूटते और शीघ्र जोड भी लिए जाते हैं। सचमुच में आपका प्रेम इसी नमूने का था।

गुरुभाइ सम्प्रदायापाय के संग आपने मीरा, पद्मा, पद्माय और समय-समय पर साधु साध्वियों को वाचना भी प्रदान की।

मानव जीवन में सेवा का सर्वोच्च स्थान है। ऐसा कोई भी असंभव काम नहीं जो सेवा के द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सके। सुर, मुनि सभी सेवा से अनुकूल पनत दस गए हैं। संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं उनके महत्व का आधार लोक-सेवा ही रहा है। किन्तु सेवा धना कोई सहज सरल काम नहीं। घृणा और लज्जा पर विजय पाना सर्व भव से समत्व स्नेह सम्बन्ध बनाए रहना तथा निज महिमा और गौरव को भुला देना जो सेवा सापेक्ष्य है, क्या आसान और प्रत्येक के वश की बात है?

आपका सहज विनय गुण ही सेवा का कारण था। इसी से सेवा करने वाले अनेक छोटे साधुओं के होते हुए भी आप बिना संकोच सब काम किया करते थे। वृद्धावस्था और नयन दोष के कारण आप पूज्य श्री को स्वयं आहार कराते थे। आसन करना, वस्त्र बदलना समय-समय पर योग्य औषधोपचार की व्यवस्था करना भिक्षा और व्याख्यान भी प्रायः आप स्वयं ही करते थे।

आगन्तुक लोग भी यही कहते सुने जाते कि शोभाचन्द्रजी महाराज की सेवा बेजोड़ है। बाप की बेटा पति की पत्नी और गुरु की कदाचित् शिष्य भी नहीं कर सके जैसी सेवा आप गुरु भाई की कर रहे हैं। वह भी १४ वर्षों तक लगातार। सचमुच ऐसा कठोर व्रत बड़े-बड़े साधकों का भी हृदय हिला देने वाला है। इसीलिए कहावत है कि—"सेवा धर्म परम गहनो-योगिनामप्य

गम्य" अर्थात् सेवा धर्म परम कठिन है और योगीजनों के लिए भी रहस्यात्मक है। वस्तुतः कठोर से कठोर हृदय को भी सेवा के द्वारा मोम बनाया जा सकता है। कौन ऐसा होगा जो निस्वार्थ सेवाभाव से प्रसन्न नहीं हो ?

पूज्य विनयचन्द्रजी महाराज का हृदय सन्तुष्ट था कि संघ का भविष्य उज्ज्वल और सुन्दर है। जिस वर्ग में मुनि शोभाचन्द्रजी जैसा सेवा भावी और कर्त्तव्यपरायण व्यक्ति हो उसकी नैया पार ही पार है। पूज्य श्री के हृदय में शोभाचन्द्रजी के लिए प्रेम पूर्ण स्थान था। वे सोते, उठते, बैठते सतत मुनि शोभा के वचन पर ध्यान रखते थे और उनकी कद्र करते थे।

१६

पूज्य गुरुभाई का महा प्रयाण

सं० १६७२ के मृगशिर वदि १२ का दिन था। जोरों की सर्दी गिर रही थी। चारों ओर शीत का साम्राज्य था। गर्म वस्त्रधारी गृहस्थों में भी कंपकंपी पैदा हो रही थी। फिर उनका तो पूछना ही क्या? जो थोड़े से वस्त्रों में काम चलाने के आदी हैं।

कुछ दिनों से पूज्य विनयचन्द्रजी म० का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था। सन्त परम्परा से प्राप्त दवा और उपचार कारगर नहीं हो रहे थे। मुनि शोभाचन्द्रजी सेवा में जी जान से जुटे थे मगर दुःख घटने के बजाय बढ़ता ही जा रहा था।

बड़े-बड़े श्रावकों ने हठ पूर्ण आग्रह के द्वारा भैषज्य और हिमप्रभृत सेवन पर जोर डाला मगर सब बेकार। पूज्य श्री ने कहा दुःखों का इलाज है, मौत का नहीं। मेरी आयु पूरी हो चुकी है

दवोपचार का असर अब मुझ पर होने वाला नहीं। तुम सब मेरे लिए ही कहते हो किन्तु शरीरधारी कोई अमर नहीं रहता, यह ससार का अटल नियम है।

पूज्य श्री की इन बातों से किसी ने यह नहीं समझा कि इतना शीघ्र गुरुदेव का वियोग होने वाला है। किन्तु मुनि शोभाचन्द्रजी महाराज इस बात से चौंक उठे। उनकी आखे भर आयीं और मन मान गया कि—"वृथा न होहिं देव-ऋषि-वाणी" अब निश्चय पूज्य श्री के वियोग का दारुण दु ख हम लोगों को उठाना पडेगा।

आचार्य श्री ने जब शोभाचन्द्रजी के मन में कुछ अधीरता देखी तो सान्त्वना देते हुए बोले कि—"देखो शोभा मुनि! विचार की कोई बात नहीं है, शरीर मरण धर्मा और आत्मा सदा अविनाशी है। जन्म के साथ मरण एव सयोग के पीछे वियोग ससार का शाश्वत नियम है। देव, दानव या मानव कोई भी क्यो न हो, इसके पजे से नहीं बच सकता। लोक भाषा में कहा भी है—

"काल बेताल की धाख तिहुँ लोक में, देव दानव घर रोल घाले।
इन्द नरिन्द बाका बडा जोध, पिण काल की फौज को कौन पाले।
शील–सन्तोष अवध कर मुनिवर, काल को साकडे घेर घाले।
जठे जन्म जरा रोग सोग नहिं, ज्या सुखा में जाय म्हाले,
जठे काल को जोर कछु नहिं चाले।"

मौत के चगुल से मुक्ति पाने के लिए ही तो जन्म निरोध की आवश्यकता होती है और कर्म बन्धन से छुटकारा पाए विना जन्म निरोध मुश्किल ही नहीं महामुश्किल भी है। ससार का

मुक्ति का भी प्रत्येक धर्म विशेष कर जैनधर्म सिद्धि का भी साधन को भावना की दिशा में खूब ज़ोर लगाने को कहता है ताकि कर्म सम्बन्ध सर्वथा क्षीण हो जाय और यह आत्मा अपने शुद्ध रूप में अवस्थित होकर जन्म मरण के पचड़े से पिण्ड छुड़ाले।

इसके लिए एक ही उपाय है, जप, तप एवं संयम के द्वारा पूर्ण रीति से कर्मों को क्षय किया जाय। इस तरह नश्वर देह से यदि हमने अविनश्वर फल की प्राप्ति करली तो समझना चाहिए कि सब कुछ पा लिया। कहा भी है—"यदि नित्यमनित्येन, निर्मलं मल वाहिना। यशः कायेन लभ्येत, तन्नु लब्धं भवेन्न किम्।" अर्थात् यदि मलवाही अनित्य शरीर से नित्य निर्मल सुयश प्राप्त कर लिया तो क्या नहीं पाया?

यदि मरण जन्म का कारण है तो जन्म भी मरण का कारण है अतः एक के लिए रोना और दूसरे के लिए हसना, ज्ञानियों का काम नहीं है। तुम ज्ञानी हो और जानते हो कि—"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि" पुराने फटे कपड़ों को छोड़कर जैसे कोई नये वस्त्र धारण करता है वैसे ही जीव एक शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर धारण करता है। वास्तव में आत्मा न तो जन्मता और न मरता है। इसलिए बिना किसी प्रकार का विचार किए मर अन्तिम समय सुधारने का प्रयत्न करना।"

पूज्य श्री के इस प्रासंगिक सदुपदेश से मुनि शोभाचन्द्रजी को बड़ा बल प्राप्त हुआ। उनका मन का मोह शिथिल हुआ और

कर्त्तव्य की ओर दिल पूर्ण सतर्क हो गया। वे सब प्रकार से पूज्य श्री का अन्त समय सुधारने को तत्पर हो गए।

आखिर मृगशिर कृष्ण ११ की रात को ४ बजे समाधिपूर्वक पूज्य श्री ने इस नश्वर तन को छोड दिया। मुनि शोभाचन्द्रजी को कड़ा दिल करके पूज्य श्री का वियोग देखना ही पड़ा।

मुनि का भी प्रत्येक धर्म विशेष कर जैनधर्म सिद्धि का भी साधक को साधना की दिशा में खूब ज़ोर लगाने को कहता है ताकि कर्म सम्बन्ध अथवा क्षीण हो जाय और यह आत्मा अपने शुद्ध रूप में अवस्थित होकर जन्म मरण के पचड़े से पिण्ड छुड़ाले।

इसके लिए एक ही उपाय है, जप, तप एवं संयम के द्वारा पूर्ण रीति से कर्मों को क्षय किया जाय। इस तरह नश्वर देह से यदि हमने अविनश्वर फल की प्राप्ति करली तो समझना चाहिए कि सब कुछ पा लिया। कहा भी है— "यदि नित्यमनित्येन, निर्मलं मलवाहिना। यशः कायेन लभ्येत, तन्नु लब्धं भवेन्न किम्।" अर्थात् यदि मलवाही अनित्य शरीर से, नित्य निर्मल सुयश प्राप्त कर लिया तो क्या नहीं पाया?

यदि मरण जन्म का कारण है तो जन्म भी मरण का कारण है। अतः एक के लिए रोना और दूसरे के लिए हंसना, ज्ञानियों का काम नहीं है। तुम ज्ञानी हो और जानते हो कि—"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि" पुराने फटे कपड़ों को छोड़कर जैसे कोई नये वस्त्र धारण करता है वैसे ही जीव एक शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर धारण करता है। वास्तव में आत्मा न तो जनमता और न मरता है। इसलिए बिना किसी प्रकार का विचार किए मेरे अन्तिम समय सुधारने का प्रबन्ध करना।"

पूज्य श्री के इस प्रासंगिक सदुपदेश से मुनि शोभाचन्द्रजी को बड़ा बल प्राप्त हुआ। उनके मन का मोह शिथिल हुआ और

आदि प्रमुख नगरो से मुख्य-मुख्य श्रावकगण "रीया" 'पीपाड़' पहुँचे। जहा स्वामी श्री चन्दनमलजी महाराज विराजमान थे।

स्वामीजी सम्प्रदाय में वयोवृद्ध, दीक्षावृद्ध एव साधु समाचारी के विशेषज्ञ थे। साथ ही आपका अनुभव भी महान् था। अत यह आवश्यक था कि अगला कोई भी कार्यक्रम आपकी सन्मति लेकर स्थिर किया जाय।

अजमेर के सेठ छगनमलजी "रीया वाले" उन दिनों हर तरह से रत्न सम्प्रदाय के श्रावकों में अग्रणी और प्रमुख थे। लक्ष्मी की कृपा तो थी ही सग-सग विवेक पूर्ण धार्मिक श्रद्धा भी थी। अत श्रावकों का उन पर विश्वास और खासा प्रेम था। सेठ छगनमलजी एव रतनलालजी ने स्वामीजी से निवेदन किया कि—महाराज! आचार्य श्री विनयचन्द्रजी म० के स्वर्गवास से अभी इस सम्प्रदाय में अधिनायक का स्थान रिक्त हो गया है, यह आप श्री के ध्यान में ही है। अब चतुर्विध श्रीसघ की सुव्यवस्था के लिए अति शीघ्र आचार्य का होना नितान्त आवश्यक है। कृपया इसकी पूर्ति के लिए आदेश फरमाइए। हम लोग आप श्री जैसे योग्य मुनियों को अपना नायक बनाना चाहते हैं। शोभाचन्द्रजी महाराज की भी यह हार्दिक इच्छा है।

इस पर स्वामीजी ने फरमाया कि—"भाई! यह सही है कि चतुर्विध सघ की सुव्यवस्था के लिए आचार्य की आवश्यकता है और इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि आप सबकी मेरे लिए हार्दिक श्रद्धा है तथा मुनि श्री शोभाचन्द्रजी की भी मेरे प्रति ऐसी ही

१७

पूज्य पद का निर्णय

सामाजिक प्रत्येक व्यवहार को सुचारु रूप से सम्पादन करने के लिए एक व्यक्ति विशेष की आवश्यकता सदा से रहती आयी है। जिसे हम मुखिया अथवा प्रमुख नाम से सम्बोधित करते हैं। मुख्य के बिना लोक में कोई भी व्यवहार नहीं चलता। मनुष्य समाज की तो बात ही क्या? पशु पक्षियों में भी एक अगवाणी मुखिया होता है, जिसके नियन्त्रण में सारा संसार चलता है।

राजनैतिक या सामाजिक प्रमुख की तरह धर्म-समाज की शासन-व्यवस्था के लिए साधु सम्प्रदाय में भी एक मुख्य पद माना जाता है जिसे पूज्य या आचार्य कहने की परिपाटी प्रचलित है।

पूज्य विनयचन्द्रजी महाराज के स्वर्ग सिधार जाने पर एक सम्प्रदाय की शान्ति-व्यवस्था एवं समुन्नति के लिए, किसी सुयोग्य आचार्य को प्रतिष्ठित करना आवश्यक था। एतदर्थ जोधपुर, अजमेर

१८

आचार्य पदोत्सव और पूज्य श्रीलालजी म०

पूज्य श्री के स्वर्गवास के बाद महाराज श्री मारवाड की ओर शीघ्र विहार करने वाले थे, किन्तु एक विरक्त भाई की दीक्षा के कारण कुछ दिन आपको और ठहरना पडा। पौष मास में महा विरागी श्री सागरमलजी की दीक्षा हुई। उसके बाद श्री शोभाचन्द्रजी म० ठा० ४ से किशनगढ होते हुए अजमेर पधारे और मोतीकटले मे भडगतियाजी के दरवाजे पर के स्थान में विराजे।

आचार्य पद का समारोह होने से इस शुभ प्रसग में सम्मिलित होने को महासती म० सिरेकवरजी, जसकवरजी और श्री मल्लाजी आदि सतियाजी भी पधार चुकी थीं। पूज्य श्री श्रीलालजी म० थली में दीक्षा के हेतु पधारने वाले थे सौभाग्यवश वे भी अजमेर पधारे और सूरतसिंहजी की कचेरी में विराजे।

अब स्वामी श्री चन्दनमलजी म० के पधारने की कमी रह गयी। अत उनके शुभागमन की ओर लोगों की टकटकी लग

निष्ठा है। किन्तु वयोवृद्ध होने से अब मैं इस भार के लिए असमर्थ हूँ। अतः मेरी हार्दिक अभिलाषा और सम्मति है कि मुनि श्री शोभाचन्द्रजी को ही आचार्य पद प्रदान किया जाय। वे स्वर्गीय आचार्य श्री कजोड़ीमलजी म० के प्रमुख शिष्य होने के साथ विद्या विनय एवं आचार से भी सम्पन्न हैं। उन्होंने स्वर्गीय पूज्य विनयचन्द्रजी म० की भी लगन से सेवा की है। शान्त दान्त, गम्भीर और शास्त्रज्ञ होने से वे आचार्य श्री के रिक्त स्थान की पूर्ति करने में पूर्ण योग्य हैं। संघ को बिना किसी प्रकार का विचार किए उन्हें आचार्य पद पर आरूढ़ करना चाहिए। मैं अपनी शारीरिक स्थिति के अनुसार सदा सेवा करने को तैयार हूँ।"

आप सब मेरी ओर से शोभाचन्द्रजी महाराज को कहदो कि वे सन्तों को लेकर निश्चित समय से कुछ पहले ही अजमेर पहुँच जावें।

श्रावकगण स्वामीजी म० का सन्देश लेकर महाराज श्री के पास आए और स्वामीजी महाराज का अभिप्राय एवं संकेत यथा वत सेवा में निवेदन कर दिए।

चतुर्विध संघ की अभिलाषा और स्वामीजी महाराज के आदेश को मान देकर मुनि शोभाचन्द्रजी म० इस प्रस्ताव को अस्वीकार नहीं कर सके। परिणामस्वरूप चतुर्विध संघ की ओर से यह घोषणा करदी गई कि मुनि श्री शोभाचन्द्रजी महाराज को अजमेर में पूज्य पद प्रदान किया जायगा।

पूज्य श्री ने सुजानगढ में पोखरमल्लजी की दीक्षा होने से जल्दी जाने की इच्छा प्रकट की। जब प्रमुख श्रावको ने यह समाचार स्वामीजी म० से निवेदन किया तो आप पूज्य श्री के पास जाकर बोले—"महाराज! पधारना तो है ही, फिर भी सयोगवश इस अवसर पर जब आपका समीप विराजना है तो दो चार दिन के लिए जल्दी कर पधार जाना शोभा-जनक नहीं होगा। पारस्परिक प्रेम की जो छाप इस समय जन-मानस पर पड रही है, आपके विहार कर देने से, उससे कमी का भान होने लगेगा। अत इस अवसर पर आपको यहा विराज कर सबके आग्रह को मान देना चाहिए।"

स्वामीजी म० के इस समयोचित निवेदन ने पूज्य महाराज के मन पर गहरा असर किया। उन्होंने कहा—'आप बडे हो, आपकी बात को मैं टाल नहीं सकता। अत अवसर कम होने पर भी फा० कृ० आठ तक तो अब जरूर ठहर जाऊंगा।' पूज्य श्री की इस स्वीकृति से सब में हर्ष की एक लहर दौड गई।

पूज्य श्री और स्वामीजी म० का प्रतिदिन सयुक्त प्रवचन होने से अजमेर, जयपुर एव किशनगढ़ आदि क्षेत्रों के श्रोता निरन्तर बढ़ने लगे। करीब २४ सन्त एव ३०–४० महासतियों के विराजने से समवसरण का सुहावना दृश्य आखो को बड़ा ही रमणीय प्रतीत होता था। लोग कहा करते थे कि—आज के इस भौतिकवादी युग में न सिर्फ भारत के लिए किन्तु समस्त विश्व के लिए, त्याग, तपस्या, सयम, कष्ट सहन, पदयात्रा और अकिंचनता आदि व्रत पर जीवन न्योछावर करने वाले इन मुनियो का

रही थी। इधर स्वामीजी म० को पीपाड़, कोसाणा, मसूदा, मसूदा आदि प्रमुख गांवों से पधारते हुए, सर्दी में वर्षा के कारण पैर का अंगूठा पक जाने से कुछ दिनों तक मेड़ता में रुकना पड़ा, अंगूठे म साधारण सुधार होते ही आप विहार करते हुए पुष्कर पधार गए।

जैसे ही यह खबर अजमेर पहुँची कि दर्शनार्थ लोग उमड़ पड़े। श्री शोभाचन्द्रजी म० भी कुछ दूर सामने पधारे एवं पूज्य श्रीलालजी म० के दो सन्त भी स्वागतार्थ आगे गए।

सन्तों का यह प्रेम पूर्ण मिलन एवं भावभीना स्वागत बड़ा ही दर्शनीय था। स्वामीजी म० तत्काल यहीं जाकर विराजे जहां श्री शोभाचन्द्रजी म० ठहरे हुए थे। किन्तु फिर "लाख नकाठड़ी" मोतीलालजी कासट के मकान म पधार गए। यहां पूज्य श्री श्रीलालजी म० के पास में होने से सन्त-समागम और संलाप सुगमता से हो सकता था। दोनों बड़े सन्तों का एक ही साथ व्याख्यान होने लगा। आस पास की जनता इस दुर्लभ सन्त-समागम और अमृतवाणी का लाभ लेने को उमड़ पड़ी जिससे अजमेर उस समय तीर्थराज की तरह जन संकुल और सुशोभित हो रहा था।

फाल्गुन कृ० ८ को आचार्यपद प्रदान का निश्चय हो चुका था और इधर पूज्य श्रीलालजी म० फा कृ० दो तीन को विहार करने को उद्यत हो रहे थे। श्रावक संघ ने आपसे पृथक् प्रार्थना की कि महाराज! फा कृ आठ को महा आचार्य पद महोत्सव हो रहा है। अतः ऐसे प्रसंग पर आप भी यहीं विराजना चाहिए। किन्तु

पूज्य श्री ने सुजानगढ में पोखरमल्लजी की दीक्षा होने से जल्दी जाने की इच्छा प्रकट की। जब प्रमुख श्रावकों ने यह समाचार स्वामीजी म० से निवेदन किया तो आप पूज्य श्री के पास जाकर बोले—"महाराज! पधारना तो है ही, फिर भी सयोगवश इस अवसर पर जब आपका समीप विराजना है तो दो चार दिन के लिए जल्दी कर पधार जाना शोभा-जनक नहीं होगा। पारस्परिक प्रेम की जो छाप इस समय जन-मानस पर पड रही है, आपके विहार कर देने से, उससे कमी का भान होने लगेगा। अत इस अवसर पर आपको यहा विराज कर सबके आग्रह को मान देना चाहिए।"

स्वामीजी म० के इस समयोचित निवेदन ने पूज्य महाराज के मन पर गहरा असर किया। उन्होंने कहा—'आप बडे हो, आपकी बात को मैं टाल नहीं सकता। अत अवसर कम होने पर भी फा० कृ० आठ तक तो अब जरूर ठहर जाऊ गा।' पूज्य श्री की इस स्वीकृति से सब में हर्ष की एक लहर दौड गई।

पूज्य श्री और स्वामीजी म० का प्रतिदिन सयुक्त प्रवचन होने से अजमेर, जयपुर एव किशनगढ़ आदि क्षेत्रों के श्रोता निरन्तर बढने लगे। करीब २४ सन्त एव ३०–४० महासतियों के विराजने से समवसरण का सुहावना दृश्य आखों को बडा ही रमणीय प्रतीत होता था। लोग कहा करते थे कि—आज के इस भौतिकवादी युग मे न सिर्फ भारत के लिए किन्तु समस्त विश्व के लिए, त्याग, तपस्या, सयम, कष्ट सहन, पदयात्रा और अकिंच-नता आदि व्रत पर जीवन न्योछावर करने वाले इन मुनियों का

जीवन शतशत वन्दनीय हैं। इनमें भी आचार्य पद का तो कहना ही क्या ? जो संघ प्रत और नियमों के महान् उत्तरदायित्वपूर्ण भार से निरन्तर दबा ही रहता है। जिसके प्रत्येक पद और कर्म पाबन्दियों से कसे रहते हैं।

फाल्गुन कृ० अष्टमी का वह दिन जिसकी आकुल प्रतीक्षा थी आखिर आ ही गया। आचार्य पद रूप कांटों के ताज पहनने के इस महोत्सव को देखने के लिए उस दिन सवेरे से ही झुण्ड के झुण्ड भीड़ इकट्ठी होने लग गयी। कार्यारम्भ के पहले ही विशाल जन-समुदाय से महोत्सव का प्रांगण खचाखच भर गया था। आबाल वृद्ध नर-नारी से उमय मैदान में कहीं तिल धरने की भी जगह नहीं रह गई थी। लाल पीले, हरे, नीले रंगभर वस्त्रों की शोभा देखते ही बनती थी। नियत समय पर सन्त समुदाय उस महोत्सव की पवित्र भूमि पर पधार गए और वीर भगवान् की जय से मानव मेदिनी गूंज उठी।

अष्टमी शनिवार के मंगलमय समय में मुनि श्री शोभाचन्द्रजी महाराज आचार्य के उच्च पद पर बैठाए गए और महोत्सव प्रारम्भ हुआ। सबसे पहले स्वामी श्री चन्दनमलजी महाराज ने मंगलोच्चारण पूर्वक आचार्य पद की चादर मुनिश्री पर डालते हुए उपस्थित भीड़ को सम्बोधित करते हुए घोषणा की कि आज से पूज्य श्री विनयचन्द्रजी म० के पट्ट पर मुनि श्री शोभाचन्द्रजी म० को आप सब पूज्य समझें। अब रत्न सम्प्रदाय का चतुर्विध श्रीसंघ आपके शासन में होगा। प्रत्येक साधु साध्वी को आपकी आज्ञा अखण्ड रूप से पालन करना चाहिए।

प्रत्येक धर्म प्रेमी जन जानते हैं कि गुरु गम्भीर कर्त्तव्यों से भरपूर होने के कारण जैन मुनि का जीवन कितना कठोर और दुस्तर होता है। उसमें भी आचार्य पद का निर्वाह तो और भी कठिनतम है। चतुर्विध श्री सघ की सुव्यवस्था का गौरवपूर्ण भार, पग-पग में कठिनाई और डग-डग में उलझन पैदा करता है। जैसे ही पूर्वोपार्जित पुण्य से इस महापद की प्राप्ति होती है वैसे ही पूर्व पुण्य से ही इसका निर्वाह भी समझना चाहिए। दिखावा या आडम्बर से सर्वथा शून्य यह पद, कर्त्तव्य भार में शायद ही अन्य किसी पद से कम हो। बिना साधन एक मात्र सयम के आदर्श से सुदूरवर्ती भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में बिखरे जन मन को पवित्र भावों में पिरोए रखना, श्रीमन्तों में धर्मस्थान बनाए रहना और निर्मोही मुनि मण्डल को एक सूत्र में सजोए रखना तथा विशाल श्री सघ में सामजस्य बनाए रखना कोई सहज सरल बात नहीं है।

कहावत है कि—"सघे शक्ति कलौयुगे" अर्थात् इस कराल कलिकाल में शक्ति-बल की आधार-भूमि सघ ही है और उस सघ सगठन की सारी जिम्मेदारी सघपति की योग्यता पर निर्भर है। सघपति (आचार्य) यदि योग्य, सच्चरित्र, नेक, सन्तुष्ट, प्रियभाषी, दूरदर्शी और गुणवन्त हुआ तो निश्चय उस सघ का भविष्य उज्ज्वल है, ऐसी लोक विश्रुत बात है। हमें प्रसन्नता है कि मुनि श्री शोभाचन्द्रजी इन सब गुणों में सम्पन्न हैं। किन्तु योग्य से योग्य सघपति को भी जब तक चतुर्विध श्री सघ का सहयोग सुलभ नहीं होता, तब तक वे अपने पद के निर्वाह में सफल नहीं होसकते। जिन-जिन आचार्यों के कार्यकाल में वीर शासन की

जितनी भी प्रगति प्रभावना हुई है, उनकी जड़ में चतुर्विध संघ का सहयोग ही प्रमुख रहा है। अतएव पूज्य श्री शोभाचन्द्रजी म० एवं श्री संघ की प्रगति का मूल कारण आप लोगों का सहज सरल सहयोगात्मक स्नेह सम्बन्ध है जिसे आप बनाए रखेंगे बस इतना ही कहना पर्याप्त है यह कह कर स्वामीजी चुप हो गए।

अनन्तर पूज्य श्री श्रीमलजी म० ने भी पूज्य पद गौरव पर आगम सम्मत सुमधुर वर्णन किया। जिसे सुन कर उपस्थित जन-समूह का मन विकसित हृदय हर्ष विभोर हो उठा। मन मयूर मगन मस्ती में मचल कर नाच उठा। अन्यान्य मुनिराजों ने भी प्रसंगोचित प्रवचन सुनाए और अनेक नगरों से आयी हुई प्रसंगोचित मंगल कामनाएं भी पढ़ी गयीं।

अन्त में पूज्य शोभाचन्द्रजी महाराज जनसमूह का ध्यान आकृष्ट करते हुए मधुर शब्दों में बोले कि—आप लोगों ने आज मुझे एक महान् पद पर आसीन किया है, लेकिन महान् पद पर बैठा देने में ही महानता नहीं है महानता और बड़प्पन तो उसे निभाने से बनता है। स्वामीजी म० और आप सबके जिस सहज स्नेह से सम्बद्ध होकर जिस प्रकार मैंने इस भार को स्वीकार कर लिया, कुछ हिचक और आनाकानी नहीं की, उसी सहज स्नेह के साथ आप लोगों को भी मेरी एवं समाज का संग देना होगा। साधु का जीवन ही साधना संयम पूर्ण था अब इस पद के भार से वह भार अधिक बोझिल और दुर्वह बन गया है। अतः सब मिल कर सहयोग देते रहिएगा तो कठिनाई आ

उलझनों का यह गोवर्धन भी प्रसन्नता से उठ जायेगा। आपकी दी हुई पद प्रतिष्ठा का परिपालन आप सबके ही हाथ है। मैं आशा करता हूँ कि स्वामीजी म० तथा पूज्य श्री और अन्य सन्त सतिया जो इस कार्य में सहयोगी रहे हैं, उन सबके सहयोग से मेरा सघ सेवा रूप कार्य अनायास पार पहुँच सकेगा और सबका मुझे पूरा सहयोग भी मिलता रहेगा। यह कह कर पूज्य शोभाचन्द्रजी म० चुप हो गए। सारी कार्यवाही सुन्दर और शान्त वातावरण मे समाप्त हुई। भगवान महावीर एव उपस्थित दोनो चिर-नव पूज्यों के जयनाद के साथ यह मगल समारोह सम्पन्न हुआ। इसके बाद साधु समुदाय के साथ दोनों पूज्य सग-सग सूरतरामजी की कचहरी में प्रमोदमय वातावरण के बीच अपने-अपने निवास स्थान पधारे। अजमेर का वह मागलिक महोत्सव तथा मुनि पुङ्गवों के पारस्परिक विनय प्रदर्शन, प्रत्यक्षदर्शियो के लिए चिर-स्मरणीय रहेगा। पूज्य श्री श्रीलालजी म० के जीवन चरित्र मे लिखा है कि—"दोनों सम्प्रदायों के साधुओं में परस्पर इतना अधिक प्रेम-भाव देखा जाता था कि उसे देख हृदय आनन्द से उमरे बिना नहीं रहता।"

१८

संयोग और वियोग

संयोग और वियोग "मिलन बिछुड़न" संसार का एक अटल नियम है। दुनिया के प्रत्येक प्राणी परस्पर मिलते और जुदा हो जाते हैं। वस्तुतः इन्हीं दो परस्पर विरोधी कड़ियों में जगत् जकड़ा और व्यवस्थित है। इसी असामंजस्य की नींव पर जागतिक सामंजस्य और सौन्दर्य की भव्य इमारतें अटल एवं सुदृढ़ रहती हैं।

समान भावना वाले चिर-वियुक्त दो हृदय का मिलन हर्ष और आनन्द की सृष्टि करता है, स्नेह और आत्मीय भावों को अगाध तम एवं मूर्त रूप बनाता है, पारस्परिक प्रेम और विश्वास को सुदृढ़ करता तथा चिन्ताकुल विकल मानस को स्थिर और शान्त बनाता है। संयोग जीवन का सबसे सुखद और मधुर रूप है, जिस पर कि जगत् का अस्तित्व है।

इसी भांति वियोग दुःख दर्द का मूल हेतु या सोपान है। यह जीवन को नीरस अवसन्न और दुःख पूर्ण बना देता है। वियोग

का रूप इतना असुन्दर और डरावना है कि स्मरण मात्र से ही हृदय काप उठता है। वियोग की घडी में साधारण ससारी जन की हालत बेहालत और रूप विद्रूप वन जाता है। जीवन की समस्त आशा, माधुर्य और सद्भावनाए, निराशा, कटुता और विकलता में पलट जाती हैं तथा जीवन दुर्वह भार की तरह असह्य प्रतीत होने लगता है।

किन्तु द्वन्द्वात्मक इस जगत् में इन दोनों का अस्तित्व चिरन्तन और ध्रुव सत्य स्वरूप है। एक के विना दूसरे का यथार्थ ज्ञान असम्भव और अकल्पनीय है। जुदाई न हो तो मिलन की हर्षानुभूति ही नहीं हो सकती और मिलन ही न होवे तो वह जुदाई या वियोग नहीं साक्षात् चिर-समाधि या महामृत्यु है। इस प्रकार दोनों का परस्पर सापेक्ष अस्तित्व या सत्ता है। मधुराका की अमृतमयी सुधाधवल चन्द्र ज्योत्स्ना की सरस सुभग सुखानुभूति के लिए, पावस अमावस की प्रगाढ़ अन्धियाली से आकुल-व्याकुल वने मन का होना नितान्त अपेक्षित है। भूख ही भोजन में स्वाद और तृषा ही पानी में माधुर्यानुभव कराती है। जडता से चेतनता और अज्ञता से ही विज्ञता का महत्व आका जाता है।

यद्यपि सयोग और वियोग का यह मनोवैज्ञानिक विश्लेषण उन पर अपना असर नहीं डालता, साधारण लोगों की तरह हर्ष विषाद की छाप नहीं छोड़ता, जो सासारिक माया वृत्ति और तज्जन्य फलानुभव से किनारा कस वैराग्य वृत्ति अपना चुके हैं।

जो सांसारिक सुख दुःख को मानसिक अनुकूल प्रतिकूल संवेदन का एक कल्पित स्वभाव या धर्म मानते हैं। जिन पर आत्मानंद के अखण्ड आनन्द की धुन सवार है, चिर-वियोग मुक्ति की जिन्हें लगन लगी है, चिर-संयोग सच्चिदानन्द रूप बन जाने की जिनकी कामना है, ऐसे अलख निरंजन मायामोह रहित जन को संयोग वियोग का यह अस्थायी क्षणिक प्रभाव क्यों कर विमुग्ध करे ! फिर भी वस्तु स्वभाव या परिस्थिति का वह किञ्चित असर डाल दुख भरा यह साधु सम्मेलन या संयोग पृथग्-विहार वियोग जन्य सूनापन म परिवर्तित हो गया। पूज्य श्रीलालजी महाराज बीकानेर की ओर पधारे और स्वामी श्री चन्दनमलजी महाराज अजमेर के आसपास ही विचरने के लिए अजमेर शहर से विहार कर गए। पूज्य श्री शोभाचन्द्रजी म का विहार जोधपुर की ओर हुआ जहां कि उनका अगला चातुर्मास होने वाला था। इस प्रकार भक्त-मानस को कुछ दिनों तक हर्षोन्मत्त बना आखिर सन्तों की टालियां अपने निर्मोहीपन का इजहार करती विभिन्न मार्गों में बिखर चलीं। अजमेर शहर ने मूकभाव से इस वियोग व्यथा को सहन किया जैसा कि इस स्थिति में कितनी बार पहले भी यह सहन करते आया था।

२०

जोधपुर का प्रथम चातुर्मास

पूज्य-पद पाने के बाद आपका पहला चातुर्मास जोधपुर नगर में हुआ। आपके जन्म, शैशव, दीक्षा और ज्ञान ग्रहण तक का यह प्रमुख रंगस्थल रहा है। इसकी गोदी में आपने रोना, हँसना, चलना, फिरना, मिलना, जुलना, और मायामोह से बिछुड़ना सीखा, ज्ञान, ध्यान और आत्मोत्थान के विधि विधानों से परिचित हुए, संसार की असारता और उच्च मानवीय भावों की जानकारी ग्रहण की। फिर भला यहां के नगरवासियों को आचार्य बन जाने पर आपके चातुर्मास का प्रथम सुअवसर प्राप्त क्यों नहीं होता? श्री हर्षचन्द्रजी म० आदि तीन संत आपकी सेवा में थे और था जोधपुर का हर्ष विभोर सारा भक्त समाज। आनन्द और प्रसन्नता पूर्वक धर्म ध्यान में चातुर्मास के दिन बीतने लगे।

पूज्य श्री की उपदेश शैली आकर्षक और रोचक थी। जटिल दुरूह शास्त्रीय भावों को लोक-भाषा में, जनमानस में अङ्कित कर देने की कला में आप पूर्ण निपुण थे। यही कारण था कि न सिर्फ

जैन मस्कि जैनेतर विद्वान् बन्धु भी आपके व्याख्यान मे रस लेते थे। और आपके प्रभावपूर्ण उपदेशों से प्रभावित होकर वैराग्य भाव से ओतप्रोत हो जाते थे। कई सनातन-धर्मावलम्बी विद्वान भी आपकी निस्पृहता और त्यागपूर्ण संदेश से इतने अधिक खींच से गए थे कि प्रति दिन व्याख्यान में आए बिना उन्हें चैन नहीं मिलती थी।

प्रसिद्ध वक्ता पं० मुनि श्री चौथमलजी म० का भी चौमासा संयोग से इस वर्ष यहीं था। दोनों ओर उत्साह से धर्म प्रचार होता रहा। संघ में पूर्ण शान्ति एवं प्रेम का वातावरण आरम्भ से अन्त तक बना रहा। दूर दूर के दर्शनार्थी भक्तों से जोधपुर नगर धर्मक्षेत्र या तीर्थ स्थान की तरह बन गया था।

तेरा पंथ के आचार्य कालूरामजी का भी इस साल जोधपुर में ही चातुर्मास था। जंगल की ओर जाते आते दोनों सम्प्रदाय के साधुओं का परस्पर मिलना हो जाता और कभी २ कुछ प्रश्नादि भी उन लोगों की ओर से चल पड़ते थे। एक दिन हर्षचंदजी म० ने उनके साधु से पूछा कि बोलो आठ योग कहां पाते हैं? साधु को उत्तर नहीं आया। महाराज ने कहा—अच्छा, पच्चीस बोल जानते हो उनमें कौन किससे कम व कौन ज्यादा—अल्प बहुत्व बतलाओ। साधु इसका भी जवाब नहीं देसका, बोला कल कहूँगा। महाराज ने कहा—ठीक, कोई हरकत नहीं। तुम अपने गुरुजी से पूछ कर कल इसका उत्तर ले आना परन्तु उत्तर महाराज या। परिणाम स्वरूप आचार्य कालूरामजी ने अपने साधुओं

से हिदायत करदी कि रत्नचन्दजी के साधुओं से चर्चा नहीं करना।

इस चातुर्मास में धर्म की जागृति अच्छी हुई । तपश्चर्या की झडी सी लग गई। चडे छोटे सभी घरों में व्रत, प्रत्याख्यान आदि धर्मभाव प्रचारित हुए और जोधपुर के आबाल वृद्ध नरनारी ने आचार्य श्री के विराजने से धार्मिक भाव का मनमाना पुण्य उपार्जन किया और उपदेश का भी लाभ लूटा। इस प्रकार परम प्रसन्नता और उल्लास व उमग के वीच चातुर्मास सम्पन्न हुआ। चातुर्मास के वाद पूज्य श्री मारवाड़ के आसपास के गावों में विहार करते और वहा के भक्त जनों के वीच वीरवाणी की महिमा सुनाते हुए पीपाड की ओर पधारे।

२१

स्वामीजी का महाप्रयाण

अजमेर का चातुर्मास पूर्ण कर स्वामी जी श्री चन्दनमल जी म० ठा० ४ से ब्यावर पधारे। कुछ दिन वहां ठहर कर पूज्य शोभाचन्दजी म० से मिलने के लिए आपने मारवाड़ की ओर विहार किया। सुखशान्तिपूर्वक विहार करते हुए माघ बदि तीज को आप 'बावरा' गांव पधारे और मुनि श्री खींवराज जी एवं मुनि श्री सुजानमल जी दो संत 'कोटड़ा' पधारे। दूसरे दिन सं० १९७२ मा० कृ० चौथ को १२ बजे स्वामीजी को अचानक एक वमन हुई। पास रहे हुए मुनि श्री भोजराज जी एवं अमरचन्दजी म० ने आरोग्यार्थ यथायोग्य प्रयत्न किए, किन्तु इस दुःख दर्द का रूप ही कुछ और था। वह उपचार से मिटने नहीं, वरन् उपचार सहित स्वामी जी को यहां से उठाने आया था। परिणामस्वरूप अल्प समय में ही स्वामी जी ने देहलीला समाप्त की और अचानक स्वर्गवासी बन गए। जिसने भी इस बात को सुनी, वह क्षण भर के लिए स्तब्ध रह गया।

पूज्य श्री उस समय पीपाड सीटी विराज रहे थे। उनको इस अनहोनी घटना से बहुत आश्चर्य और विषाद हुआ। सघ व्यवस्था में सर्वथा सहायक, योग्य पथप्रदर्शक, निरभिलाषी, महोपकारी, सरल स्वभावी आदर्श साधुता और सच्चाई के आदर्श प्रतीक ऐसे महामुनि का सहसा वियोग हो जाने से पूज्य श्री का सहज गभीर हृदय भी अल्प समय के लिए खिन्न हुए बिना नहीं रहा।

वस्तुत' स्वामीजी का इस सम्प्रदाय को तथा विशेषकर पूज्य श्री को बहुत बडा सहारा था। वे हर घडी पूज्य श्री पर स्नेह दृष्टि बनाए रहते तथा प्रत्येक क्षण उलझी समस्या को सुलझाने में एक सुयोग्य सलाहकार के रूप में सहायक सिद्ध होते थे। सघ के लिए भी स्वामी जी का कदम सदा आगे ही बढा रहता था। यही कारण था कि क्या सत और श्रावक सबके दिल में स्वामी जी के प्रति असीम श्रद्धा और स्नेह भरा था।

अब पूज्य श्री के सामने सवाल यह आया कि सहसा इस रिक्त स्थान की पूर्ति कैसे हो ? और सघ की सुव्यवस्था कैसे चलाई जाय ? क्योंकि थोडे समय में ही सघ के दो महान् स्तम्भ उठ गए, जिनका रहना अभी अत्यावश्यक था। चार खभों पर खड़े रहने वाले घर की जो हालत दो खभों के हट जाने से होती है, ठीक वैसी स्थिति अभी इस सघ की भी होगई थी। अतएव पूज्य श्री कुछ समय तक गभीर विचार के प्रवाह में निस्तब्ध रहे।

यह स्थिति कुछ ही देर तक रही और शीघ्र ही उन्होंने अपने मन को स्थिर किया कि मेरी इस चिन्ता से न तो सघ व्यवस्था सुधरेगी और न अब स्वामी जी का पुनरागमन ही संभव होगा।

करते यह चिन्ता कहीं आर्त ध्यान का रूप धारण करले तो बुरा बना होगा। संसार के सारे सम्बन्ध इसी तरह नश्वर और क्षण भंगुर हैं। मनुष्य जिनसे बहुत आशाएं और उम्मीद बांधे उनसे शीघ्र बिछुड़ने की नौबत उपस्थित हो जाती है। यह मर्त्यभुवन है, यहां अमर बन कर कौन आया है? कोई आज तो कोई कल इस सराय रूप संसार से विदा होने ही वाला है। स्वामी जी की देह से हमारा इतने ही समय तक का सम्बन्ध था, अब इसकी चिन्ता बेकार है। ऐसा सोचकर पूज्य श्री ने स्वर्गीय आत्मा के गुण चिन्तन एवं देहादि संबन्ध को हटाने के लिए मुनियों को निर्वाण कायोत्सर्ग करने की आज्ञा दी और आप भी उस काम में लग गए।

सभी मुनियों ने कायोत्सर्ग किया। संघ में स्वामी जी के निधन की खबर विद्युत् वेग से फैल गई। जिस किसी ने इस समाचार को सुना सन्न रह गया। सहसा किसी को विश्वास नहीं हो पाता था कि ऐसे परमार्थी संत का भी कहीं इतना शीघ्र सहसा स्वर्गवास हो? लेकिन ऐसी बातें झूठ नहीं होतीं यह जानकर सबने स्वर्गीय आत्मा के त्यागादरा की स्मृति में उस दिन शक्ति भर व्रत नियम व प्रत्याख्यान आदि किए।

इस तरह रत्न सम्प्रदाय का एक चमकता सितारा जो कभी जन नयनों का प्यारा था, सहसा सदा के लिए विलीन हो गया। किन्तु गात जात भी वह जो अपनी मधुर मोहक स्मृति हृदय में जमा गया वह काल के गर्भ में धुंधली पड़ सकती है किन्तु कभी मिट नहीं सकती।

२२

पीपाड़ का निश्चित चातुर्मास बड़लू में

स्वामी श्री चन्दनमल जी महा० के स्वर्गवासी होने पर साम्प्रदायिक सघ-व्यवस्था के निरीक्षण व सरक्षण का भार पूज्य श्री के ऊपर ही आ पडा। प्रमुख २ सतों के स्वर्गवास से एक ओर तो कार्यभार बढ गया और दूसरी ओर सहायक सतों का स्वास्थ्य भी कुछ कुछ बिगड़ गया। इन सब कारणों से पूज्य श्री को पीपाड ही विराजना पड़ा। इधर चदनमल जी म० के स्वर्गवास के वाद स्वामी श्री खींवराज जी म० ठा० ४ से विहार कर पूज्य श्री के पास पीपाड़ पधार गए थे। आप स्वामी जी के निधन काल में उनके पास थे। अतएव उनके साथ के दो सतों द्वारा स्वामी जी के निधनकालीन सारे समाचार पूज्य श्री ने जान लिए। अन्त में पूज्य श्री ने स्वामी श्री खींवराज जी महाराज से कहा कि "स्वामी श्री चन्दनमल जी महाराज तो अब वापिस नहीं आएगे चाहे कोई सॅभले या विगडे। इस हालत में अनुभव-वृद्ध होने से सघ व्यवस्था में आपको मेरा सहायक और मार्गदर्शक वनना चाहिए।"

स्वामीजी का अभाव स्वामीजी को ही पूरा करना चाहिए। स्वामी जी म० ने पूज्य श्री का सतोषजनक उत्तर दिया और कुछ काल तक उन्हीं के साथ वहां विराजे । संतों की शारीरिक स्थिति ठीक होते ही पूज्य श्री ने मड़ता की तरफ विहार कर दिया और मड़ता में कुछ दिन विराज कर नागोर की ओर पधारे। क्योंकि इस बीच में विहार का क्रम रुक सा गया था। अतः कहीं अधिककाल तक न रुक कर अल्प अल्प विहार करने का विचार पूज्य श्री के मन में दृढ़ बन गया था।

चातुर्मास की विनती का काल करीब आ पहुँचा था। अतः मड़ता, पीपाड़ आदि विभिन्न क्षेत्रों के श्रावक विनती के लिए पूज्यश्री के पास नागोर पहुँच गए। इधर नागोर वालों की प्रार्थना थी कि यह चातुर्मास नागोर में ही होवे। पूज्य श्री रतनचन्द्रजी महाराज साहब के जन्म स्थान को उसके ऐतिहासिक महत्व के अनुरूप चातुर्मास का वरदान जैसे भी प्राप्त हो वैसी गुरुदेव आज्ञा फरमावें। हर क्षेत्र के श्रावक अपनी-अपनी ओर खींचना चाहते थे। अजीब उलझन भरी समस्या उपस्थित हो गयी थी।

अन्त में पूज्य श्री ने फरमाया कि आप सब अपने-अपने क्षेत्र में 'मेरा चातुर्मास' करवाना चाहते हैं और यह भी निश्चित है कि शास्त्र-मर्यादा के अनुकूल मुझे भी कहीं एक जगह चार मास बिताने हैं। फिर भी यह सम्भव नहीं कि एक आदमी एक काल में एक जगह ठहरने के अलावा एक साथ अनेक व्यक्तियों की अनेक स्थान के लिए निष्काम रूप भावना को स्वीकार करके उस

पूर्ण करदे। अब आप सबको ही निर्णय देना पडेगा कि मैं क्या करू ? सभी प्रार्थी चुप और अवाक् रह गए। किन्तु पीपाड वाले नहीं रुके और बोले कि महाराज! आप चाहे जैसा आदेश दे, हम सब उसे माथे चढा लेंगे। लेकिन यह वरदान तो लेकर जाएंगे कि इस वर्ष का चातुर्मास पीपाड मे होवे।

पूज्यश्री ने बतलाया कि मेरी शारीरिक स्थिति ऐसी नहीं कि कुछ साफ-साफ कहूँ। फिर भी आपके अत्याग्रह से कहता हूँ कि अभी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को देख कर समाधिपूर्वक बिना विशेष कारण के पीपाड चातुर्मास करने का भाव है। जय-ध्वनि के साथ व्याख्यान समाप्त हुआ। सभी श्रावक दर्शन कर अपने-अपने क्षेत्र पधारने की विनती करते हुए नागोर से रवाना हो गए। पीपाड वालों की खुशी का तो कहना ही क्या ? उन्होंने तो प्रार्थना की दगल मे विजय पायी थी, फिर क्यों न फूले समाते ?

नागोर में पूज्य श्री के विराजने से धर्म की अच्छी जागृति रही। श्रावगी और ओसवाल भाई बहन काफी सख्या मे पूज्य श्री के उपदेशामृत पान का लाभ लेते थे। दोनों समय व्याख्यान होता था। हर दिल में धर्मानुराग और प्रेम हिलोरें ले रहा था।

नागोर से मु डवा, खजवाना, हरसोलाव आदि क्षेत्रों को पावन करते हुए पूज्य श्री बड़लू पधारे। जहा से आपको चातुर्मास के लिए पीपाड पधारना था।

सयोग बलवान् होता है। मनुष्य चाहता कुछ और होना कुछ है। प्लेग का प्रकोप पीपाड में बढ़ता जा रहा था। इस साघातिक

रोग ने गांव को हलचल में डाल दिया। मृत्यु संख्या कुछ अधिक नहीं थी, फिर भी भारी आशंका और भय से सारा गांव अस्त-व्यस्त बनता जा रहा था। सब कोई जानते थे कि पूज्यश्री का यह चातुर्मास पीपाड़ होगा। किन्तु यहां की परिस्थिति बदल गई। यहां से कुछ लोग तो गांव छोड़ कर चले गए और कुछ जाने की तैयारी में लगे हुए थे। चारों ओर भगदड़ और भय का बोलबाला था। अतः हित-चिन्तक श्रावकों ने विचारा कि इस विषम परिस्थिति में सन्तों को कष्ट देना उचित नहीं है। इसलिए यहां की जानकारी पूज्यश्री को करा देनी अच्छी रहेगी। कुछ लोगों की राय थी कि पूज्यश्री एक बार पीपाड़ अवश्य पधारें, फिर जैसा मुनासिब समझें करें। कहीं उनके पावन रज-संयोग से यह बला ही टल जाय।

मगर विचारवान श्रावकों ने बिना कारण सन्तों को मार्ग-श्रम देना ठीक नहीं समझा, खबर करवाई कि प्लेग से हमारा गांव धीरे-धीरे खाली हो रहा है। अतः पूज्यश्री इधर विहार करने का कष्ट नहीं उठाएं।

कभी-कभी परिस्थिति के सामने मनुष्य को नहीं चाहते भी हार खानी पड़ती है यही स्थिति पीपाड़वासियों की भी हुई। एक दिन जिन्होंने पूरी आशा और उमङ्ग भरे दिल से चातुर्मास की विनती की थी अनेक सहयोगियों में अपनी सफलता देख कर विजयोल्लास मनाया था और चातुर्मासोत्सव के लिए अनेक विध तैयारियां की थीं उन्हें विवश होकर आज कहना पड़ा कि चातुर्मास की व्यवस्था कहीं अन्यत्र हो।

सन्तों को इस दुर्बलता का भान भले नहीं हो, लेकिन स्याद्-वादी भाषा में कहने की उनकी नीति-रीति या शैली सत्यपूर्ण और आडे-वक्त में काम देने की चीज बन जाती है। जिन्हें इन अनिश्चयात्मक वचनों से कभी-कभी झुंझलाहट पैदा हो जाती है, उन्हें भी ऐसे नाजुक समय में इसके महत्व और गौरव का पता आसानी से चल सकता है।

उपरोक्त समाचार बडलू (भोपालगढ) के श्रावकों ने पूज्य श्री को अर्ज किये। साथ ही बडलू में ही चातुर्मास करने की विनती भी की। एक तो समय की कमी, दूसरी वहा के श्रावकों की जोरदार विनती, इस तरह परिस्थितिवश १६७४ का चातुर्मास पीपाड के बदले बड़लू (भोपालगढ) निश्चित हो गया।

उपाश्रय का स्थान छोटा होने से बोथराजी के नोहरे में चातुर्मास की व्यवस्था रक्खी गई। पूज्य श्री ठा० ४ वहीं जाकर विराजे। व्याख्यान के लिए सन्त पाटा उठा कर लाना चाहते थे, किन्तु पाटा बड़ा और वजनदार होने से सहज में नहीं उठ रहा था। इस पर पूज्यश्री ने फरमाया कि लो मैं अकेला ही इसे उठा लेता हूँ। आपने जोर लगाकर पाटा तो उठा दिया, मगर हाथ पर जोर पडने से नसों में दर्द उभर आया। साधारण रूप मे तकलीफ तो कई दिनो तक रही लेकिन पूज्य श्री ने कभी उस पर विशेष ध्यान नहीं दिया।

बड़लू के इस चातुर्मास में बादलों का बल बडा प्रबल रहा। उमडते घन की घटा और उससे झरने वाली झड़ियों ने खुशी

के साथ-साथ दुःख दूर करने में भी कोई कसर नहीं रक्खी। वर्षा की अधिकता से कई कच्चे मकान गिर गए और कितने ही समय सन्तों का आहार विहार भी रुक गया। फिर भी उपदेशामृत की तेज-धारा से भव्य-जीवों के मन में घर करने वाले पातक रूपमल को मिटाने में कोई कसर नहीं रक्खी गई। अगर वर्षा से वसुधा का ताप मिटा, बाहरी मल धुला तो इस सन्त-संगति एवं सदुपदेश से मानस की ज्वाला मिटी और अविवेक रूप मल धुल गया इसमें भी कुछ सन्देह नहीं।

श्रावक, श्राविकाओं में, बेले तेले, अट्ठाई और पचरंगियों का तांता सा लग गया। कभी कुछ नहीं करने वाले भी धर्माराधन में रम जाने लगे। दोनों समय व्याख्यान का ठाठ लगा रहता था।

कई श्रावक व्रती बने, कई धर्मानुरागी बने और कितने व्यसन-त्यागी बने। वस्तुतः सत्संग और सदुपदेश का सुन्दर प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। चाहे कोई भी क्यों न हो एक बार धर्म-महिमा के आगे उसे झुकना ही पड़ता है। कठोर से कठोर और नीच से नीच हृदय वाला भी साधु जनों के सम्पर्क से सीधा, सच्चा और सरल बनता देखा गया है।

२३

स्वामी श्री खींवराजजी का वियोग

पूज्य श्री जब वडलू चातुर्मास में विराजते थे तो स्वामी खींवराजजी म० का चातुर्मास ठा० ४ से पाली था। चातुर्मास के अन्त में आपको बुखार और दस्त की पीड़ा अधिक सताने लगी जिससे आपका विहार रुक गया। पूज्य श्री को वडलू सूचित किया गया कि आप वहा से विहार कर सीधे पाली पधार जावें तो स्वामीजी की दर्शन लालसा पूरी हो जावे। उनका स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा है और वे एक तरह से जीवन की आशा छोड बैठे हैं, बस अन्तकाल में आपका एक बार दर्शन कर लेना चाहते है।

पूज्य श्री ने उत्तर में फरमाया कि "जहा तक हो सकेगा मैं शीघ्र पहुँचने का प्रयास करू गा। किन्तु पाली पहुँचने के लिए पीपाड से जो सीधा मार्ग जाता है, उसमें बीच-बीच में नदी-नाले का पानी आता है। इसलिए जोधपुर के रास्ते सडक होकर आने का भाव है।" इसके अनुकूल मृग० कृ० १ को विहार कर कूडी

वगैरह क्षेत्रों से होते हुए मार्ग कृ० ७ को आम महामन्दिर पहुँचे। इस समय पाली से केसरीमल परडिया का पत्र जोधपुर आया जिसका आशय यह था कि पूज्यश्री यदि जोधपुर पधार गए हों तो पाली की तरफ जल्दी विहार करने के लिए अर्ज करें। पत्र का आशय पूज्य श्री को निवेदन किया गया। लेकिन पूज्यश्री के हाथ का दर्द इस समय तक मिट नहीं पाया था। इससे बोझ उठा कर चलने में बाधा होती थी। अतः आपने फरमाया कि "मैं जल्द से जल्द कोशिश करके भी मार्ग कृ० १२ के पहले पाली नहीं पहुँच पाऊंगा क्योंकि मेरे हाथ में अभी भी दर्द है फिर पाली से स्वामीजी के जैसे समाचार मिलेंगे, वैसे ही करने के भाव हैं।" इस तरह की सूचना पाली करवी गई।

इस बीच पूज्य श्री विहार करने ही वाले थे कि हड्डी और नसों का एक जानकार वहां आया और पूज्य श्री का हाथ देखकर बोला कि मैं इसे मसल कर तीन दिनों में ही ठीक कर दूंगा। किन्तु तब तक चलना फिरना बन्द रखना पड़ेगा। बाद चाहे जहां चल फिर सकते हैं। पूज्यश्री ने विचार किया कि यदि तीन दिन में दर्द ठीक हो गया तो पहुँचने में और तीन दिन लगेंगे इस तरह दर्द भी दूर हो जाएगा और समय पर वहां पहुँच भी जायेंगे।

इधर पाली से पुनः खबर आयी कि स्वामीजी म० का स्वास्थ्य दिन प्रति दिन बिगड़ता ही जा रहा है। पूज्यश्री शीघ्रता से पधारें तो मिलना हो सकता है। मगर इस सूचना के बाद

स्वामीजी की पीड़ा वढती ही गयी। पूज्य श्री विहार करके भी नहीं पहुँच सके और आप सथारा ग्रहण का आग्रह करने लगे।

पास के सन्तों को कभी इसके पहले सथारा का प्रसग सामने नहीं आया था अत वे सब असमजस में पड गये। विश्वस्त एव जानकार श्रावक की सलाह ली गई। केसरीमल वरडिया जो पाली के खास जानकार व अनुभवी श्रावक थे उनकी राय यही रही कि महाराज को तकलीफ अधिक है, अत इनकी इच्छा हो तो सथारा करा देना चाहिए। ऐसी राय कर वे सन्तों के साथ स्वामीजी के पास पहुँचे और भलीभाति देखकर वोले कि महाराज! आपका क्या विचार है? स्वामीजी ने फरमाया कि अब विचार क्या पूछते हैं? जिस जीवन सफलता के लिए घर द्वार, कुटुम्ब-परिवार, सहज-सरल-जीवनोपभोग्य-सुख सामग्रिया त्याग दीं, यह अवसर विलकुल नजदीक है। अब मृत्यु-सुधार से वह अन्त सफलता भी हासिल करनी चाहिए। इसके सिवा न कोई अन्य चिन्ता और न लालसा ही है।

स्वामीजी के दृढ़ विचार एव प्रबल विश्वास को देखकर सर्व-सम्मति से आपको मार्ग कृ० ११ को सथारा करा दिया गया। उपस्थित सन्त समयोचित स्वाध्याय सुनाने लगे।

प्रात'काल स्व० पूज्य श्री धर्मदासजी म० की सम्प्रदाय के वर्तमान आचार्य श्री नन्दलालजी महाराज जो वहीं विराजते थे, स्वामीजी के सथारे की खबर सुन कृपा कर सन्तों के साथ पधारे और स्वामीजी की स्थिति देखकर सन्तों से वोले कि

मगैरह क्षेत्रों से होते हुए माग कृ० ७ को आप महामन्दिर पहुँचे। उस समय पाली से केसरीमल परडिया का पत्र जोधपुर आया जिसका आशय यह था कि पूज्यश्री यदि जोधपुर पधार गए हों तो पाली की तरफ जल्दी विहार करने के लिए अर्ज करें। पत्र का आशय पूज्य श्री को निवेदन किया गया। लेकिन पूज्यश्री के हाथ का दर्द इस समय तक मिट नहीं पाया था। इससे बोझ उठा कर चलने में बाधा होती थी। अतः आपने फरमाया कि "मैं जल्द से जल्द कोशिश करके भी मार्ग कृ० १२ के पहले पाली नहीं पहुँच पाऊंगा क्योंकि मेरे हाथ में अभी भी दर्द है फिर पाली से स्वामीजी के जैसे समाचार मिलेंगे वैसे ही करने के भाव हैं।" इस तरह की सूचना पाली करदी गई।

इस बीच पूज्य श्री विहार करने ही वाले थे कि हड्डी और नसों का एक जानकार वहां आया और पूज्य श्री का हाथ देखकर बोला कि मैं इसे मसल कर तीन दिनों में ही ठीक कर दूंगा। किन्तु तब तक चलना फिरना बन्द रखना पड़ेगा। बाद चाहें जहां चल फिर सकते हैं। पूज्यश्री ने विचार किया कि यदि तीन दिन में दर्द ठीक हो गया तो पहुँचने में और तीन दिन लगेंगे इस तरह दर्द भी दूर हो जाएगा और समय पर वहां पहुँच भी जाएंगे।

इधर पाली से पुनः खबर आयी कि स्वामीजी म० का स्वास्थ्य दिन प्रति दिन बिगड़ता ही जा रहा है। पूज्यश्री शीघ्रता से पधारें तो मिलना हो सकता है। मगर इस सूचना के बाद

स्वामीजी की पीडा बढती ही गयी। पूज्य श्री विहार करके भी नहीं पहुँच सके और आप सथारा ग्रहण का आग्रह करने लगे।

पास के सन्तों को कभी इसके पहले सथारा का प्रसग सामने नहीं आया था अत वे सब असमजस में पड गये। विश्वस्त एव जानकार श्रावक की सलाह ली गई। केसरीमल वरडिया जो पाली के खास जानकार व अनुभवी श्रावक थे उनकी राय यही रही कि महाराज को तकलीफ अधिक है, अत इनकी इच्छा हो तो सथारा करा देना चाहिए। ऐसी राय कर वे सन्तों के साथ स्वामीजी के पास पहुँचे और भलीभांति देखकर बोले कि महाराज ! आपका क्या विचार है ? स्वामीजी ने फरमाया कि अव विचार क्या पूछते हैं ? जिस जीवन सफलता के लिए घर-द्वार, कुटुम्ब-परिवार, सहज-सरल-जीवनोपभोग्य-सुख सामग्रियां त्याग दीं, यह अवसर बिलकुल नजदीक है। अब मृत्यु-सुधार से वह अन्त सफलता भी हासिल करनी चाहिए। इसके सिवा न कोई अन्य चिन्ता और न लालसा ही है।

स्वामीजी के दृढ़ विचार एव प्रबल विश्वास को देखकर सर्व-सम्मति से आपको मार्ग कृ० ११ को सथारा करा दिया गया। उपस्थित सन्त समयोचित स्वाध्याय सुनाने लगे।

प्रात काल स्व० पूज्य श्री धर्मदासजी म० की सम्प्रदाय के वर्तमान आचार्य श्री नन्दलालजी महाराज जो वहीं विराजते थे, स्वामीजी के सथारे की खबर सुन कृपा कर सन्तों के साथ पधारे और स्वामीजी की स्थिति देखकर सन्तों से बोले कि

स्थिति गम्भीर है, आप सबने संथारा करा दिया सो ठीक किया है। यों तो आप मुनि लोग तत्परता से सेवा साध रहे हो, फिर भी यदि अवसर हो तो हमें भी सूचित करना ताकि थोड़ा-बहुत हम भी लाभ ले सकें। पूज्य श्री के पत्र आने पर उपस्थित सन्त स्वाध्याय आलोचना आदि सुनाते रहे। दो-तीन पहर का संथारा पूर्ण कर मृग० कृ० १२ को दिन के दो बजे स्वामीजी ने देह त्याग दी। इस प्रकार शोभाम्बर का एक ज्योतिष्मान नक्षत्र सदा के लिए विलीन हो गया।

स्वामीजी महाराज के स्वर्गवास बाद उनकी सेवा में रहने वाले श्री सुजानमलजी म० श्री भोजराजजी म० व श्री अमरचन्दजी म० तीनों सन्त पाली से विहार कर मागशी० शु० ६ को जोधपुर पूज्य श्री की सेवा में पधार गए। पूज्य श्री का दर्द अभी मिटा नहीं था इसलिए करीब दो मास तक आपका जोधपुर से बाहर विहार नहीं हो सका मिवराताघरा वहीं रुकना पड़ा।

२४

कष्टों का झूला

स्वामीजी का दु ख अभी भुलाया भी न था कि जोधपुर मे पूज्यश्री की आज्ञानुवर्तिनी महासती श्री सिणगाराजी महाराज की सुशिष्या श्री सूरजकु वरजी को प्लेग ने पकड लिया और इसी पीडा में आपका देहान्त भी हो गया। जोधपुर में प्लेग का सचार होने लगा था। अत श्रावकों ने हाथ जोडकर पूज्यश्री से अर्ज की कि अभी आप यहा से पाली की ओर विहार करदें तो अच्छा रहेगा। प्लेग के प्रसार से सारा जोधपुर क्षेत्र अशान्त और विषाक्त है। अत. नहीं अर्ज करने योग्य बात भी अर्ज करनी पड़ती है।

अवसर देखकर पूज्यश्री भी ठा० ७ से पाली पधारे और वहा पर मासकल्प विराजे। बाद में पूज्यश्री ठा० ४ से दो दिन सोजत विराजते हुए ब्यावर की तरफ पधारे और मुनि श्री भोजराजजी महाराज, अमरचन्द्रजी महाराज तथा सागरमुनिजी महाराज पीपाड़ की ओर चल पड़े, जहा महासतियांजी श्री तीजाजी

चुके थे। वह विरह दुःख भुलाया भी न था कि अचानक संघ मस्तक को ही इस क्रूर रोग ने धर दबाया इससे बढकर संघ के लिए चिन्ता और हो भी क्या सकती थी ? सेठ छगनमलजी आदि भक्त श्रावकों ने बडी तत्परता से सेवा की। वैद्य रामचन्द्रजी आदि जानकार वैद्यों की देख रेख और आहार विहार के संयम से किसी तरह यह बाधा दूर हो गई। पूज्यश्री के पथ्य ग्रहण से संत और श्रावक संघ सभी आनन्द विभोर हो उठे। क्योंकि अत्यन्त भयंकर दुःख का विराम भी, एक प्रकार के अनुपम सुख का कारण माना गया है।

पुण्य प्रभाव से रोग तो जाता रहा किन्तु रक्त के पानी बनकर निकल जाने से शरीर सर्वथा अशक्त और कमजोर बन गया था। बिना विश्राम लिये विहार करने की क्षमता नष्ट सी हो गई थी। अतएव वैद्य डाक्टरों की राय से दो मास तक आपको अजमेर में ही विराजना पडा। पूर्ण स्वस्थ होने पर किशनगढ होते हुए आषाढ में आप जयपुर पधारे जहा कि इस वर्ष का चातुर्मास निश्चित हुआ था।

२५

महासतीजी का संथारा

जयपुर का सौभाग्य था कि ७३–७४ के दो चातुर्मास बाहर कर १९७५ में पूज्यश्री ने फिर यहां चातुर्मास की कृपा फरमाई। इस समय श्री छगनचन्दजी म० सुजानमलजी म० भंवरलालजी म० अमरचन्दजी म० लाभचन्दजी म० और श्री सागरमलजी म० ६ संत आपकी सेवा में थे। भक्ति-भाव की अधिकता और धार्मिक लगन के कारण चातुर्मास में धर्म की अच्छी प्रभावना हुई। जिस उमंग और उत्साह से चातुर्मास कराया गया था, वह सर्वथा सफल रहा। सुख शान्तिपूर्वक चातुर्मास पूरा हो गया।

मृ कृ. प्रतिपदा को पूज्यश्री विहार करके जयपुर के बाहर नथमलजी के कटला में ठहरे हुए थे कि अचानक माधोपुर से खबर आयी कि महासतीजी श्री मल्लांजी के पैर में एक प्रकार का जहरीला घाव हो गया जो बढ़ता ही जाता है, घटने का नाम नहीं लेता। खबर पाकर जयपुर के श्रावक सेठ डाक्टर को साथ लेकर माधोपुर गए।

डाक्टरानी ने घाव को देख कर अभिप्राय जाहिर किया कि "घाव विषैला है, पैर कटा दिया जाय तो अच्छा, नहीं तो घाव फैलकर प्राणान्त करके छोड़ेगा"। इसको सुन कर सतीजी ने कहा कि–"मरने की तो कोई चिन्ता नहीं, किन्तु पैर कटा कर सयम मार्ग की आराधना में असुविधा पैदा करना मैं नहीं चाहती। जब मरना निश्चित है फिर उससे डरना क्या? हाँ, एक लालसा अवश्य है कि इस अन्तिम समय में पूज्यश्री का दर्शन मिल जाता तो जीवन के साथ २ मृत्यु भी सफल बन जाती। साथ ही माधोपुर के भक्तजनों को मेरे निमित्त गुरु देव के दर्शन व उपदेश श्रवण का सुअवसर प्राप्त हो जाता।" जयपुर के भाई इस समाचार को लेकर लौट आए।

पूज्यश्री को सारी स्थिति अर्ज कर कहा कि वे आप श्री के दर्शनों के लिए पूरे उत्सक हैं। कृपया आप विहार कर उधर ही पधारें। जब सतीजी की भक्ति भावना ऐसी थी तब भला पूज्यश्री अपनी रीतिनीति को कैसे भुला देते? उनकी आज्ञानुवर्तिनी सती जीवन की अन्तिम घड़ी में उनका दर्शन चाहती है ऐसी स्थिति में उसे कैसे भूल जाते। आपने शीघ्र तीन सतों के सग माधोपुर के लिए विहार कर दिया और मार्ग के अनेक गावों को पवित्र करते हुए आखिर माधोपुर पहुँच ही गए।

वहां पधार कर सतीजी के कष्ट को देखा और विविध उपदेशों से उनके कष्ट पीडित मन को प्रबोध दिया। पूज्यश्री के दर्शन से उस विकलावस्था में भी सतीजी को पूर्ण सतोष हुआ।

क्योंकि जिन सत्पुरुषों की कायिक, वाचिक व मानसिक प्रवृत्ति ही लोक-कल्याण-कामनामय है, ऐसे महापुरुषों को देख कर दुःखी जीवों को एक अनिर्वचनीय शान्ति की प्राप्ति अनायास ही हो जाती है। महापुरुषों की आकृति को 'भार्ग हरा' विशेषण प्राप्त है, जिसका अर्थ पीड़ित मित्र होता है।

सन्तोष एवं शांति का अनुभव करती हुई महासतीजी ने अर्ज की कि—"महाराज! अन्त समय में आपके दर्शन की बड़ी लालसा थी वह तो पूरी हो गयी। अब एक निवेदन जो कि जीवन का सबसे अन्तिम निवेदन है आप से करती हूँ कि मुझे संथारा करा दीजिए। जिस से जीवन का यह अन्त भाग भी सफल हो जाय।" सतीजी के विचारों की दृढ़ता व योग्य अवसर को देख कर पूज्य श्री ने उन्हें संथारा करवा दिया। तीन चार दिन का संथारा पूर्ण कर सतीजी परलोक पधार गई।

पूज्यश्री इधर कई वर्षों से एक न एक बाधा से घिरे रहते थे, अतः शान्त होकर कुछ करने व सोचने का सुअवसर नहीं मिल पाया। यहां तक कि विहार का क्रम भी अस्त व्यस्त हो चला था—अतः इच्छा हुई कि अभी कुछ दिनों तक इसी क्षेत्र में विचरते हुए वीर वाणी का प्रचार करना ही ठीक रहेगा।

२६

आचार्य श्री माधोपुर के क्षेत्र में

आचार्य श्री का माधोपुर प्रान्त में पधारने का यह प्रथम प्रसग था। माधोपुर के इलाके में साधु साध्वियों के पधारने का अवसर कम ही होता है। इस कारण से वहा के लोगों में साधुओं के प्रति श्रद्धा और भक्ति अधिक रहती है। अनेक गावों के धर्म-प्रेमियों ने पूज्यश्री से अपने २ गाव में पधारने की विनती अत्याग्रह के साथ की।

आचार्य श्री ने वहा के लोगों की भक्ति और क्षेत्र की नवीनता तथा दया धर्म के प्रचार का सुअवसर देखकर हा भर दिया। और माधोपुर से सामपुर व उणियारा आदि क्षेत्रों को पावन करते हुए बूदी कोटा की ओर पधारे। आपके पधारने एव सदुपदेश से उधर के लोगों पर अच्छा प्रभाव पडा। सोयी धार्मिक भावना जग पड़ी और सूने मानस पुन श्रद्धा से उमड़ पडे।

कोटा-रामपुरा में कई दिनों तक विराज कर धर्म प्रचार किया। वहा के प्रमुख सेठ चुन्नीलालजी ने अच्छी सेवा बजाई।

यहाँ से विहार कर आप "झालरापाटण" पधारे और आस पास के कई गाँवों में भी विचरे।

इधर आपने सुना कि-रामपुरा भानपुरा यहाँ से नजदीक है और वहाँ एक श्रावक शास्त्र के अच्छे जानकार हैं। साधु न होकर भी व आरम्भ समारंभ से अलग केवल धर्मस्थान में ही रहते हैं और अधिकांश समय शास्त्र वाचना एवं उसके परामर्श में ही बिताया करते हैं। उनकी मालवा मेवाड़ के अतिरिक्त अन्यान्य प्रान्तों में भी प्रसिद्धि है। अतः समीप पधार कर आप श्री को उनसे एक बार अवश्य मिलना चाहिए। इस प्रकार की मन से इच्छा हुई कि जयपुर मुनि श्री रूपचन्द्रजी भोजराजजी आदि जिन तीन सन्तों को छोड़ कर आये हैं उनको सूचना दिलाकर यदि ठीक जवाब आ जाय तो रामपुरा केसरीमलजी श्रावक से एक बार मिल लें। इस निमित्त थोड़ा मालव का भी भ्रमण हो जाएगा। ऐसा सोचकर आपने श्रावकों के माध्यम जयपुर संतों को सूचना कराई कि आप लोगों का मन हो तो आप सब अभी अजमेर पधार जावें। महाराज श्री मालवे की ओर विहार करना चाहते हैं।

जयपुर से जवाब आया कि पूज्य श्री के विहार की निश्चित सूचना मिले तो हम सब भी आचार्य श्री की सेवा में रहना चाहते हैं।

इस प्रकार जयपुर के समाचार पाकर पूज्य श्री ने विचार किया कि इन तीनों को इधर बुलाना असुविधा जनक होगा। कारण एक

नाइयों का सामना करना पड़ेगा। इसलिए अभी यहा से विहार कर टोंक होते हुए जयपुर चलना ही उचित होगा। ऐसा विचार कर पूज्य श्री उधर से जयपुर की ओर पधारे। वीच के मार्ग में टोंक आता है। टोंक में जैनों की सख्या अल्प होने पर भी लोगों की भक्ति सराहणीय थी। पूज्यश्री श्रीलालजी म० ससार में यहीं के वावेल कुटुम्ब के थे। अत पूज्य श्री आते समय टोंक होकर पधारे। वहा सेठ माणकचन्दजी वावेल आदि का सेवाभाव प्रशसनीय रहा। कुछ दिन विराज कर आप जयपुर पधार आए।

गर्मी की ऋतु आ गयीं थी। मारवाड की धरती तवा सी जल रही थी। लू की लपटें और पछवैया हवा भीतर वाहर ज्वाला उत्पन्न कर रही थीं। दिन की तो बात ही क्या रात भी तीव्र सास की तरह गर्म गर्म मालूम पड़ रही थी। पेड पौधे ही नहीं झुलसे भीषण ताप से मानव मुख भी मुरझाया नजर आता था। अजीव परेशानी थीं? जाएँ तो कहा और ठहरें तो कहा? बडे २ ठडे महल भी गर्म कोठी का रूप धारण किए हुए थे।

गर्मी के मौसम में प्रति वर्ष पूज्य श्री के शरीर में "दाहूजला" की वेदना हुआ करती थी। भीषण गर्मी का बल उसे और भी बढ़ावा दिए जा रहा था। साथ के अन्य सतों का स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं था। निदान विहार की प्रवल इच्छा होते हुए भी रुकना पड़ा। समझ रहे थे कि कुछ दिनों में विहार की स्थिति हो जाएगी। परन्तु क्षेत्र स्पर्शना वलवान् होती है। अत १६७६ का चातुर्मास भी आपको जयपुर में ही करना पड़ा। चातुर्मास के

समय ६ संत आपके साथ सेवा में थे। बड़े पूज्यश्री की सेवा में १४ वर्ष रह कर मानो ये चातुर्मास जयपुर के लिये पूर्णाहुति के रूप में हो वैसे अन्तिम चातुर्मास थे।

जयपुर संघ की धर्म भावना आपके विराजने से अत्यधिक बढ़ गई। बच्चे बूढ़े हर दिल में आपके प्रति अगाढ़ श्रद्धा थी। आपके सदुपदेश का सहयोग पाकर धर्म प्रेम का बिरवा लहलहा उठा तथा ज्ञान ध्यान के फलफूल से वह लद गया। धर्म के प्रति जिन लोगों में आलस्य और सुस्ती देखी जाती थी वे भी धर्म स्नेह की मस्ती से इन दिनों झूमते नजर आए। इस प्रकार धार्मिक रंग से सराबोर यह द्वितीय चातुर्मास जयपुर को तीर्थरूप कर गया।

२७

मुनि श्री लालचन्दजी का मिलन

जयपुर चातुर्मास के बाद विहार कर पूज्यश्री किशनगढ होते हुए अजमेर पधारे। वहा कुछ दिन विराज कर पुष्कर, थावला, पादू होते हुए आप मेडता पधारे। थावले गाव में अमीऋषिजी महाराज की सेवा में रहने वाले मुनि लालचन्दजी पूज्यश्री से मिले। ये पहले से भी परिचित थे क्योंकि ससार में जोधपुर के सिंघी कुल के थे। इनकी इच्छा स्वामी श्री हरखचद जी म० की सेवा में रहने की थी। पूर्व परिचित होने के कारण स्वामी जी का विश्वास था कि हमारा इनका निभाव हो सकता है। इस विचार से स्वामी जी ने पूज्यश्री से अर्ज की। हाल समझकर पूज्यश्री ने पूछा कि इन्होंने ऋषिजी का सग कब और क्यों छोडा ? इनके विषय में ऋषिजी के विचार क्या हैं ?

इस पर मुनि श्री लालचदजी ने कहा कि उन्होंने खुशी से मुझे आपकी सेवा में रहने की आज्ञा दी है। स्वेच्छा या किसी

विरोध में मैं यहाँ नहीं आया ? । आप उचित समझें तो मुझे रक्खें या मुनासिब आज्ञा दें ।

होनहार बड़ा बलवान होता है । यह असंयोग को भी सुसंयोग में बदल देता है । लालचंदजी की बात और सफाई सुनकर भी अभी तक पूज्यश्री ने इनके लिए कुछ निर्णय नहीं दिया था । मगर एक दिन दुर्योग से विहार के बीच पांवला और बड़ी पादू के मध्य एक गांव में किसी उद्दंड सांड ने लालमुनि को गिरा दिया । इस घटना में लालचंदजी का जोर की चोट लगी और वे चलन फिरन में भी परावलम्बी बन गए । अब सेवा व्यवस्था के लिए अब इनका मिलाना आवश्यक हो गया । इसलिए पादू में बड़ी दीक्षा देकर इनको मिला लिया और स्वामी श्री हरखचंद जी महाराज की सेवा में इन्हें रख दिया । श्री हरखचंदजी म० ठा दो को किसी खास समाचार से पीपाड़ की ओर विहार करना पड़ा ।

२८

वैरागी चौथमल्ल का संग

आचार्य श्री जब छोटी पादू में विराजमान थे तो मेवडा गाव का एक लड़का जो वहाके प्रतिष्ठित श्रावक प्रतापमल सन्तोकचन्द जी के पास काम करता था, पूज्यश्री के उपदेश से प्रभावित होकर उसे भी धर्म प्रेम उत्पन्न हुआ। उसने महाराज श्री की सेवामें रहने की इच्छा से सेठजी को कहा कि मै महाराजजी के पास रहकर धार्मिक अभ्यास करना चाहता हूँ। सेठजी धर्म प्रेमी थे अत उन्हें उसकी बात से बडी खुशी हुई और उन्होंने कहा कि यदि तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो खुशी से महाराज के पास रहो और ज्ञान ध्यान सीखो। पढ़ने लिखने के बाद अगर तुम मुनि बनना चाहोगे तो तुम्हारे काका की आज्ञा वगैरह की व्यवस्था हम करवा देंगे।

पूज्यश्री का विहार वहा से मेड़ते की तरफ हुआ, सेठ सतोष-चन्दजी ने मार्ग के लिये कुछ साधन साथ में देकर उस बालक को पूज्यश्री के साथ कर दिया। पूज्यश्री के पास वह अपना धार्मिक अभ्यास करने लगा एव ज्ञानार्जन में रमगया।

मथुरा में सुल्तानमलजी पारीपाल बहुत सभा मानी य
उन्होंने सब प्रकार से पूज्यश्री की सेवा की तथा वैरागी भाई
भी बड़े प्रेम से समझाया। वहाँ कुछ दिनों के बाद मालूम हुआ
पीछे गए हुए सन्तों को अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त हुई है

२६

पीपाड़ का अनमोल लाभ

जिस तरह परिवार में पैदा होने वाला शिशु घरभर को खुशी से भर देता है, वैसे सत समाज भी नव सत की प्राप्ति से परम प्रसन्न होते हैं। नव जात शिशु से गृहस्थ भी आशा रखता है कि यह भविष्य में घर के गौरव और कुल मर्यादा को विकसित कर जननी जनक के मुख को उज्ज्वल करेगा। सत जन भी चाहते हैं कि योग्य कोई नररत्न यदि श्रमण दीक्षा स्वीकार करे तो वह वीरवाणी प्रसार के सग २ साधु परम्परा की प्रतिष्ठा को भी बनाए रखते हुए अपनी महत्ता की छाप से गुरुकुल को गौरवान्वित करेगा।

स्वार्थ और परमार्थ के भाव से भिन्नता रखते हुए भी कामना की समानता में कोई विशेष अन्तर नहीं है। कोई भी धारा तभी तक जीवित और सार्थक नाम वाली है, जब तक कि उसका स्रोत प्रवाहित है। अत स्रोत को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि उसका उद्‌गम स्थल किसी तरह अवरुद्ध नहीं हो।

पीपाड़ में ओसवाल घराने की किसी प्रतिष्ठित बाई को अपने एकमात्र होनहार पुत्र के साथ दीक्षा भगवती की आराधना में जीवन समर्पण करना था। उसे पूज्यश्री के दर्शनोपरान्त आगे की साधना का मार्ग तय करना था। पूज्यश्री को जब यह खबर मिली तो आप मड़ला से पीपाड़ के लिए चल पड़े मड़ला से विहार कर आचार्य श्री ता० १ से 'सामिन होकर पीपाड़ पधार ने वाले थे। अतः पीपाड़ के बहुत से श्रावक श्राविकाएं 'सामिन पूज्यश्री के दर्शनार्थ पधारे' मगर उस दिन पूज्यश्री सामिन नहीं पधार सके।

दूसरे दिन साधु और श्रावक श्राविकाओं से सेवित वीरप्रभु की जय ध्वनि के संग पूज्यश्री पीपाड़ पधारे और गाढ़मलजी चौधरी की पोल में विराजे। वहाँ पहुँच कर आचार्यश्री ने उस बाई से वार्तालाप की और उनके प्रिय पुत्र को भी देखा। उस समय वह बालक मुनिश्री हरखचन्दजी महाराज के पास 'सागरस' का पाठ सुना रहा था। पूज्यश्री से विचार कर वे माता पुत्र निर्विघ्न अपनी उद्देश्य सिद्धि के लिए अजमेर सेठ श्री छगनमलजी के यहाँ चल आए जो इनके सांसारिक सम्बन्धी लगते थे। पीपाड़ में रह कर ममता का यह त्याग आसान नहीं होता। क्योंकि बिना पूछे भी कई मोह और प्रपंच में डालने से बाज नहीं आते। कहा भी है कि—"श्रेयांसि बहु विघ्नानि" अर्थात् उत्तम कार्य में हजारों विघ्न उपस्थित हो जाते हैं।

३०

'दाहूजला' और पीपाड़ का चातुर्मास

जोधपुर के श्रावक पूज्यश्री के दर्शनार्थ पीपाड आए और जोधपुर पधारने के लिए जोरदार शब्दों में प्रार्थना की। उनके अत्याग्रह और स्नेह भरी विनती के कारण पूज्यश्री ने साधु भाषा में स्वीकृति प्रदान करदी। कुछ दिनों के वाद जोधपुर पधारने के लिए आचार्य श्री पीपाड से रीया पधारे कि सयोग वश वहा आपको ज्वर हो गया। दाहजला की शिकायत तो पहले से बनी ही थी। उस पर इस भयकर ज्वर ने और जोर लगाया। ज्वर के जोर से आप वेसुध हो गए। पास वाले सतों में यह घबराहट और चिन्ता का कारण बन गया। साधुमार्गानुसार उपाय किए। पथ्योपचार से चार दिनों के बाद बुखार की तेजी धीमी और हल्की पड़ी।

साधु और श्रावकों की राय हुई कि पूज्यश्री एकवार पुन पीपाड़ पधार जाय। क्योंकि वहा सब प्रकार की सहूलियत और औषधोपचार का विशेष सयोग है। इससे शरीर की स्थिति सुधर

आयगी। फिर अवसर पाकर गन्तव्य स्थानों में खुशी से पधार सकते हैं। इस सलाह के अनुसार पूज्यश्री पुन: पीपाड़ पधारे। जब यह समाचार जोधपुर पहुँचा तो जोधपुर के मुख्य २ श्रावक विचार में पड़ गए कि पूज्यश्री वापिस पीपाड़ क्यों पधार गए? इसकी जानकारी के लिए वे सब पीपाड़ आए और यहां आकर सारी बातें मालूम की। उन सबों ने पूज्यश्री से अर्ज की कि गर्मी कुछ शान्त हो जाय तभी आप यहां से विहार कीजिएगा। क्योंकि वाहजला की तकलीफ और जर्जर टूटे शरीर से ग्राम २ विचरना, इस भयङ्कर गर्मी में आपके शरीर को बर्दाश्त नहीं होगा। शरीर की दुर्बलता और वृद्धावस्था पर भी विचार करना आवश्यक है। इस पर पीपाड़ के श्रावकों ने प्रार्थना की कि साहब! यह चातुर्मास तो पीपाड़ में होने दीजिए।

उस समय पूज्यश्री ने फरमाया कि साधु की परीक्षा भाषा पालन से ही होती है। कहा भी है कि—"साधु शब्दां परखिए" और—'मनस्येक वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्" अर्थात् मन वचन और कर्म इन तीनों में सामञ्जस्य सच्चे साधुओं में ही पाया जाता है। इसलिए साता रहते हुए तो यही विचार है कि गर्मी कम हो जाय अथवा पश्चात् वर्षा गिर जाय तब जोधपुर को विहार करूं। फिर जैसा संयोग होगा। पीपाड़ में तो बैठा ही हूँ, किन्तु अभी यहां के चातुर्मास का वचन नहीं दे सकता।

आखिर संयोग ऐसा हुआ कि न तो वर्षा ही हुई और न गर्मी हो कम हुई प्रत्युत तापमान भयङ्कर रूप धारण करता गया।

जिसमें स्वस्थ से स्वस्थ लोगों का गमनागमन भी कम साहस का काम नहीं था। इधर सेवा भावी मुनिश्री सागरमल्लजी म० अस्वस्थ हो गए। उनकी क्षुधा कम पडने से "गुरासा पेमराजी" की दवा दी जाने लगी, उनकी स्थिति विहारयोग्य नहीं थी। इस प्रकार आषाढ शुक्ल अष्टमी के बाद जब जोधपुर पधारने का समय बिल्कुल नहीं रह गया तब लाचार बन कर पूज्यश्री ने पीपाड़ का चातुर्मास स्वीकार कर लिया, और आप ठा० ६ से" केसरीमलजी चौधरी की पोल मे आ विराजे। दो ठाणे से मुनि श्री हरखचन्दजी महाराज पहले ही अजमेर पधारे और वहीं उनका चातुर्मास हुआ।

आचार्यश्री प्रात काल स्वय व्याख्यान फरमाते। सघ में चारो ओर पूर्ण उमग का वातावरण था। दया, पौषध और बेले, तेले अट्ठाई आदि तप भी अच्छे परिमाण में हुए। पचरगी और धर्मचक्र के लिए श्रावक श्राविकाओं मे होड चल रही थी। जैन लोगों के अतिरिक्त जैनेतर महेश्वरी भाइयो का भी प्रेम पूर्णरूप में था। सबकी भावना देखकर रात्रि को रामायण सुनाने की व्यवस्था की गई। श्रीसुजानमलजी म० रामायण फरमाते साथ ही जुगराजजी मुणोत जैसे युवक गवैय्ये सहयोग दिया करते थे।

इधर वैरागी चौथमल्लजी का अभ्यास भी शनै शनै बढ़ता गया। पीपाड के वैद्य धूलचन्दजी सुराणा जो सूरदास थे, उन्होंने बुद्धि वृद्धि के लिए उन्हें सरस्वती घृत का सेवन कराया जिससे उनकी स्मरण शक्ति ठीक काम करने लगी थी। मुनि श्री सागर

मन्नजी म० की देखरेख में व ज्ञान ध्यान करने लगे और प्रतिक्रमण के अतिरिक्त कुछ थोकड़े और दशवैकालिक के पांच अध्ययन कंठस्थ कर लिए। इस तरह चातुर्मास में बड़ा आनन्द रहा। स्थानीय मोतीलालजी कटारिया व्यवस्था में प्रमुख भाग लेते थे। सब लोगों का इतना प्रेम था कि आने वाले दर्शनार्थी भी गद्गद् हो जाते। संक्षिप्त में यों कहना चाहिए कि आचार्यश्री के पीपाड़ चातुर्मास करने से वहाँ धर्म भावों की अच्छी जागृति हुई और विविध भांति के ज्ञान व तप से पीपाड़ का वातावरण पवित्र बन गया। इस प्रकार १९७७ का चातुर्मास निर्विघ्न रूप से पीपाड़ में सफल व सम्पन्न हुआ।

३१

आचार्य श्री अजमेर की ओर

जीवन-यात्रा में अक्सर कई ऐसे प्रसग भी आते हैं, जिनकी न तो पहले से कोई कल्पना ही होती है और न जिनसे कुछ लाभ। प्रत्युत जो अपनी कठोरता और विचित्रता से शान्त हृदय में अशान्ति तथा उल्लास उत्साह भरे मानस में भी विषाद और चिन्ता का गहरा रग भर देते हैं। ऐसी अतर्कित अकल्पित घडी में सहसा दिल में जो चोट लगती है, उसका यथार्थ अनुभव किसी भुक्त भोगी और घायल हृदय से ही प्राप्त किया जा सकता है। मधुर कल्पना में विचरने वाले मन को अकस्मात् दु ख दर्द की पगडडी पर ला उतारना वृश्चिक दश से कम व्यथाकारक नहीं है।

पीपाड का चातुर्मास सानन्द समाप्त ही हुआ था कि अजमेर से सेठ मगनमलजी के द्वारा सूचना मिली कि गोचरी पधारते हुए मुनि श्री हर्षचन्द्रजी महाराज अव्यवस्थित ढङ्ग से गिर पड़े और उनको गहरी चोट लगी है। एतदर्थ पज्यश्री से अर्ज करें कि

य ग्रन्थार यथाशीघ्र अजमेर की ओर विहार करने की कृपा करें। क्योंकि बाबाजी की सेवा में सन्त एक ही है जिससे उनको आहार विहार आदि में बड़ी दिक्कत अनुभव करनी पड़ती है।

इस समाचार ने पूज्यश्री का ध्यान अजमेर की ओर खींच लिया। शेषकाल में कतिपय अन्यान्य क्षेत्रों में पधारने की आग्रह भरी विनती और उन पर यथायोग्य स्वीकृति प्रबल वायु वेग में पड़ी सूखी पत्ती की तरह खड़खड़ाने लग गई। एक ओर भक्त-जनों का श्रद्धा से उमड़ता भक्ति भरा आग्रह पूर्ण हृदय और दर्शन की प्यासी पलक पांवड़ बिछाती स्वागत पथ जोहती औत्सुक्य पूर्ण आंखें तथा दूसरी ओर आधिदैविक व्याधियुक्त चोट त्राण सह धर्मी की पीड़ामयी आकुल पुकार। बड़ी पेशोपेशी और असमंजसता का शुक्लपक्षा था। एक तरफ भक्ति और स्नेह तो दूसरी तरफ कर्त्तव्य और धर्म का सवाल था। आखिर स्वस्थ हृदय के प्रेम भरे आग्रह पर पीड़ित मानस की दर्द भरी पुकार की ही विजय हुई। मुनि श्री सुजानमलजी भोजराजजी एवं अमरचन्द्रजी म ठा ३ ने मारवाड़ के गांवों की ओर विहार किया और आपने ठा ३ के संग न्यावर होते हुए अजमेर की ओर विहार कर दिया।

आप जिस समय अजमेर पहुँचे उस समय तक मुनि श्री की वेदना जो रात दिन व्यथा और दर्द से उन्हें आकुलाए रखती बहुत कुछ कम हो गई थी और उनकी प्रतीति बन गई थी कि रही सही वेदना भी इस भाग्यहीन शरीर रूपी सराय में अब कुछ दिनों की मेहमान है। इस घटना से, जहां कुछ वर्षों के

वास्ते पूज्यश्री का हृदय विचार सकट में पड़ गया था, मुनि श्री की इस सुधरी दशा को देखकर वह पुन. प्रसन्न वन गया।

पूज्यश्री को अजमेर में पधारे देख कर पीपाड निवासिनी वैराग्यवती श्री रूपावाई जो कि वहुत अर्से से दीक्षा लेने को उत्सुक थी और अपने प्रिय पुत्र को वैराग्य की साधना कराने हेतु कुछ महिनों से अजमेर लाए हुई थी, पूज्यश्री से दीक्षा देने के लिए जोरदार प्रार्थना करने लगी। उसकी प्रार्थना थी कि ८-१० महीने के अभ्यास से वालक भी पूर्ण रूप से वैराग्य के रग में रग गया है। अत इसके अभ्यास की परीक्षा कर हमें शीघ्र दीक्षा की स्वीकृति दी जाय। वात ऐसी है कि किसी भी शुभ कार्य में दृढ सकल्प और अटल लगन धारण कर लेने के वाद उसका क्षणिक विलम्ब भी कल्पसम असह्य और मन को उवा देने वाला होता है। नीति भी कहती है कि—"शुभस्य शीघ्रम्" अर्थात् शुभ कार्य शीघ्र कर लेना चाहिये। क्योंकि विलम्व होने से—"काल पिवति तद्रसम्" याने समय उस शुभ कार्य के रस को पी लेता है। इस तरह उन दोनो की दीक्षा ग्रहण लालसा तीव्र से तीव्रतम वन गई थी और प्रार्थना एव शुभाग्रह अतिशयता की चोटी पर पहुँच चुके थे।

पूज्यश्री ने उन्हें भलीभाति समझाया और उनके व्यग्र मानस को विविध उपदेश तथा नीति वाक्यों से आश्वस्त कर, अधीर न होने एव कुछ समय तक और प्रतीक्षा करने का भाव दर्शाया। इस प्रकार उन्हे समझा-बुझा, उन दोनों के ज्ञान, वय, आकृति व प्रकृति की परीक्षा की जो किसी भी दीक्षार्थी के लिए उपयुक्त और आवश्यक समझी जाती है।

३२

दीक्षार्थियों का परिचय

यह पहले ही कहा जा चुका है कि इन दोनों दीक्षार्थियों का सांसारिक सम्बन्ध माता और पुत्र का था जो कि पीपाड़ के रहने वाले थे। वैरागी बालक श्री हस्तीमलजी की उम्र अभी केवल ६ वर्ष की थी। आपके पिता का देहान्त हो चुका था। मातु श्री रूपकुवरजी ने ही आपका लालन पालन किया था और इन्हीं के अनुपम स्नेह और प्यार उपदेश का यह प्रभाव या चमत्कार था कि आपके मन में इस बाल्यवय में ही दीक्षा के भाव जागृत हो जाए। आप यद्यपि वय से बालक थे किन्तु जन्मान्तर के संस्कार से आपका हृदय प्रबल और विशाल था। शिशु सुलभ चंचलता के संग २ गहन विषय ग्रहण की गंभीरता और विलक्षणता भी आपको निसर्ग से प्राप्त थी। कहा भी है कि—"होनहार बिरवान के होत चीकने पात" अतएव शीघ्र ही आप मुनि श्री हर्षचन्द्रजी म० के उपदेश वचनों और संयम के अनुकूल शिक्षाओं से साधु जीवन के सर्वथा योग्य बन गए।

मुनि श्री हर्षचन्द्रजी म० ने अजमेर में रहते हुए आपको पच्चीस बोल, नव तत्व, लघु दडक, समिति गुप्ति, व्यवहार सम्यक्त्व, श्वासोच्छ्वास, ६८ बोल और भगवती एव पन्नवरण के मिलाकर २५–३० थोकडे वीर स्तुति, नमि प्रव्रज्या, और दश वैकालिक सूत्र के चार अध्ययन का अभ्यास करा दिया था। सस्कृत में शब्द रूपावली भी पूरी कण्ठस्थ करादी गई। इस तरह इतने थोडे समय मे आपने जो कुछ भी ज्ञानाभ्यास किया, उसके लिए वडी २ उम्रवालों को एक लम्बे काल की आवश्यकता पड जाती है।

पूज्यश्री ने आपकी कई तरह से परीक्षा ली, मगर बालक होते हुए भी आप सफल रहे। पूज्यश्री का हृदय इस परीक्षण परिणाम पर प्रसन्नता से भर गया।

३३

दीक्षा की स्वीकृति

वैरागिणी माता व पुत्र के शील स्वभाव, संयम और धर्मा-परायण के प्रति अटल लगन और दृढ़ निश्चय को देखते हुए आखिर पूज्यश्री ने आप दोनों को दीक्षा देने की स्वीकृति प्रदान करदी। इन मां-पुत्र का जीवन यद्यपि संसारपक्ष में व्यावहारिक दृष्टि से स्वतन्त्र था फिर भी दीक्षा के प्रसंग में आवश्यक था कि निकटतम सम्बन्धी की आज्ञा प्राप्त करली जाय। अतः अपने कुटुम्बी की आज्ञा लेने के लिए रूपकुंवर बाई पीपाड़ गयीं। वहां रूपचन्दजी बोहरा जो वैरागी हस्तीमलजी के संसार सम्बन्ध में काका लगते थे उनसे इस सम्बन्ध की बात की गई तो वे और उनकी मातुश्री आज्ञा देने से साफ इन्कार कर गए। उन्होंने कहा कि हमारे चार घरों के बीच यह एक ही लड़का है इसको हम साधु बनने की आज्ञा कैसे दे सकते हैं? परन्तु रीयां-निवासी रूपचन्दजी गुदेचा, लक्ष्मीचन्दजी कटारिया और अजमेर-निवासी सेठ मगनमलजी के बहुत कुछ समझाने पर अन्त में उन्होंने आज्ञा

दे दी। आज्ञा पत्र प्राप्त कर मगनमल बाई स्वयं वहाँ वापिस अजमेर चली आयी। आज्ञा मिल जाने पर माघ शु० द्वितीय गुरुवार का शुभ दिन दीक्षा के लिए निश्चित किया गया।

३४

दो और दीक्षाएं

वैरागी चौथमलजी जो पादू से पूज्यश्री के साथ हुए थे एवं बहुत मेहनत से जिनको ज्ञानाभ्यास कराया जाता था, पूज्यश्री ने अपने सहयोग और उपदेश योग से उनको भी इस योग्य बना दिया था कि वे साधु धर्म के मर्म को भली भाँति समझ उसे निभा सकें। जरूरत थी सिर्फ दीक्षा ग्रहण की। अतः उनके लिए भी वही मुहूर्त निश्चित किया गया। इधर ब्यावर की एक वैरागिन बाई भी महासती श्री राधाजी के पास दीक्षा ग्रहण करने को बहुत पहले से तैयार थी।

इस प्रकार दो भाई और दो बाई ऐसे चार दीक्षाएं एक साथ होने का शुभ प्रसंग अजमेर में उपस्थित हो गया। इससे अजमेर की धर्म-समाज में उत्साह और उमंग की एक लहर सी फैल गई।

वैरागिन बाई का आज्ञा पत्र प्राप्त कर लिया गया था। वैरागी चौथमलजी के बारे में आज्ञा पत्र प्राप्त करने के लिए पादू के सेठ सन्तोषचन्दजी को सूचना दी गई और उन्होंने मेवाड़ गांव

से उसके काका को बुलाकर सब हाल कह सुनाया किन्तु वह इसके लिए तैयार नहीं हुआ और बोला कि मेरे घरमें क्या कुछ खाने की कमी है जो इस लोकापवाद को सिर उठाऊ कि उसने भतीजे को साधु बनने दिया।

सन्तोषचन्दजी ने उसे बहुत तरह से समझाया कि गरीबी के कारण कोई साधु व्रत स्वीकार नहीं करता। आज हजारों लाखों गरीब भूख से अकुलाए दरदर की खाक छानते हैं मगर वे साधु क्यों नहीं बन जाते? और बडे २ राजे महाराजे सेठ साहूकार सब कुछ छोड छाड कर मुनि बन जाते हैं ऐसा क्यों? उनको किस चीज की कमी रहती है? तुम अविवेकी की तरह बात मत करो। बहुत पुण्य प्रभाव से जीवन सुधार का यह स्वर्ण अवसर हाथ लगता है। पेट तो कुत्ते बिल्ली आदि पशु भी भर लेते हैं, जीवन तो कीडे मकोडे भी यापन कर ही लेते हैं। इसलिए लडके की भावना है तो हठ न कर के तुमको आज्ञा पत्र लिख देना चाहिए। अनेकों बालक असमय में मर जाते और हम सब सतोष कर लेते हैं, कोई सेना में भर्ती हो जाता तो कोई मुह चुराकर भाग जाता है, तब भी हमे सन्तोष करना पडता है, फिर यह तो आत्म कल्याण के लिए साधु बन कर तुम्हारे घर का नाम उज्ज्वल बनाने जाता है। अत इसमें बड़ी उमग से अपने को उसका साथ देना चाहिए। बहुत समझाने पर आखिर यह बात उसे भी जची और उसने आज्ञा पत्र सेठजी को लिखकर दे दिया तथा वह अजमेर भेज दिया गया। इस समाचार से चारों ओर खुशी छागई और अजमेर में वैरागियों के वन्दोले की तैयारी चालू हो गई।

३५

पूज्यश्री मुन्नालालजी म० का मधुर मिलन

जिस समय इधर अजमेर में चार दीक्षा की एक साथ तयारी हो रही थी हर्ष एवं प्रसन्नता की लहर उठ रही थी —संयोग वश उस समय पूज्यश्री मुन्नालालजी म० ब्यावर विराजमान थे। समाज के प्रमुख श्रावकजनों की राय हुई कि क्यों न ! पूज्यश्री मुन्नालाल जी म० को इस महोत्सव में शामिल कर उत्सव की शोभा में चार चांद लगाए जांय ! गंगा और यमुना के इस मधुर मोहक संगम को देखने की लालसा सब में बलवती हो उठी। पूज्यश्री को भी यह बात जची। और इसके अनुकूल पूज्यश्री मुन्नालालजी म० की सेवा में ब्यावर सूचना की गई कि आप सु० द्वितीया गुरुवार हमारे यहां पूज्यश्री शोभचन्द्रजी म० के पास एक साथ चार दीक्षाएं हो रही हैं। अगर उक्त अवसर पर आप पधारने की कृपा करें तो समाज को दर्शन एवं सदुपदेश श्रवण का जो लाभ होगा वह तो होगा ही साथ ही संतों का पारस्परिक प्रेम मिलन भी हो सकेगा एवं हमारे महोत्सव की शोभा में भी अभिवृद्धि होगी"।

श्रावकों के अभिप्राय को जानकर पूज्यश्री मुन्नालालजी महाराज भी सहर्ष अपने मुनि परिवार के साथ अजमेर पधार गए। प्रसिद्धवक्ता प० मुनिश्री चौथमलजी म० भी साथ थे। नील-नभ पर एक साथ उदित होने वाले दो चन्द्रों से जो आनन्द वसुधा-वासियों को प्राप्त हो सकता है वही इन दो संतो के एक साथ विराजने से अजमेर निवासियो को प्राप्त हुआ। केशी गौतम का सा दृश्य दोनों आचार्यों ने उपस्थित कर दिया। दोनों के साथ २ व्याख्यान एव उपदेश वचनों ने श्रोताजनो को हर्ष विभोर बना दिया। धार्मिक गंगा के प्रवाह से अजमेर का सतप्त मानस सरस और शीतल बन गया। इस स्वर्ण सयोग एव खुशी की खबर को पाकर हजारों की तादाद मे बाहरी दर्शनार्थी उपस्थित हो गए। और कुछ दिनों के लिए अजमेर ने फिर तीर्थ स्थान का रूप धारण कर लिया। मोतीकटला का मैदान श्रोताओ से खचाखच भर जाता था। सेठ मगनमलजी गभीरमलजी साढ और सिरहमल्ल जी दूगड आदि श्रावक व्यवस्था में खास भाग लेते थे। व्यवस्था का सारा भार सेठजी ने अपने ऊपर ले रक्खा था फिर भी सेवा में स्थानीय सब लोगों का अच्छा उत्साह था।

३६

शूल को फूल मानने का महोत्सव

प्रथम भाग की कठिनाइयों और परेशानियों से भरा भी परिचय रखने वाले लोग अच्छी तरह जानते होंगे कि इस पथ पर चलना कितना मुश्किल और जोखिम का काम है। सारी उम्र मुसीबतों और उलझनों से जूझना, सुखों का किनारे कर दुःखों को गले लगाना और बिना किसी विश्राम के करवट बदले ऊबड़ खाबड़ पथ पर अनवरत चलते जाना क्या सरल और साधारण बात है? मगर मुक्ति मंजिल का यह बहादुर कारवां विरकाल से अपनी पवित्र परम्परा के पुरातन पथ पर वारि प्रवाह के न्याय से तब तक चलता रहता है जब तक कि अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर लेता। दीप प्रभा पतंगों के अस्तित्व हीन कर देती किन्तु प्रभा प्रमी पतंग क्या कभी उस ज्वाला और दाहकता की परवाह करता देखा गया है? ध्येय की प्राप्ति में जीवन का मोह और सांसारिक लालसा सबसे बड़ी बाधा है। इसी के कारण बड़ी ऊंची योग्यता रखने वाले जन भी मंजिल पाने में पीछे पड़ जाते हैं।

इस जगत में जो जीना चाहता है और वह भी झूम-झूम कर मस्तीमय अमरता के साथ तो उसे सदा डट कर मरना सीखना चाहिए। जो मरना नहीं जानता उसको सच्चा और सुघड़ जीवन सम्भव ही प्राप्त हो पाए ? पाटल-प्रसून की छवि सौरभ के प्रेमी को काटों में उलझने के भय और पीडन का अभ्यासी बनना चाहिए। तभी सच्चा आनन्द प्राप्त हो सकता है।

अजमेर के वे दिन बड़े आनन्द के दिन थे हजारों नर-नारी सन्त वचनामृत या आनन्दामृत का रसास्वादन करने आते रहते थे। दीक्षा की धूम ने कुछ लोगों के मन को गुमराह कर दिया। वे कहने लगे कि बच्चे छोटे है अभी इनको पूरा होश भी नहीं है। अत. अभी इनको दीक्षा देना ठीक नहीं। छोटे-छोटे बच्चे ये दीक्षा को क्या समझें ? इस तरह पूज्यश्री के पीछे विरोधी इधर-उधर प्रचार करने लगे। उनको पता नहीं था कि दीक्षार्थी का योग्य अयोग्यपन अवस्था से नहीं माप कर सस्कार एव गुणों से मापा जाता है। बड़ी अवस्था के सज्ञान दीक्षित भी बहुत से भ्रष्ट हो जाते और बाल दीक्षित भी सैंकड़ों यथावत् सयम का पालन करते दिखाई देते हैं। बालक को जैसा भी सस्कार दिया जाय यथावत् ले सकता है परन्तु ऊ ची उम्र वालों में सहसा परिवर्तन नहीं हो पाता। उनके शील स्वभाव शीघ्रता से मोडे नहीं जा सकते। इतिहास के आदिकाल से लेकर आज तक निर्माण के लिए बालक को ही योग्य पात्र माना गया है। हा, वह जाति सम्पन्न, कुल सम्पन्न, शान्त, जितेन्द्रिय, विनयशील एव शुभ लक्षण वाला अवश्य होना चाहिए।

पडोसी और नाते-रिश्ते जो कुछ भी थे, उन सबसे दिल तोड रहे हैं और एक ऐसे समाज से अपना स्नेह जोड रहे हैं जो सांसारिक सुख साधन को छोड कर धर्माराधन में ही सदा मन लगाए रहते हैं।

यह बात हमेशा ध्यान मे रखनी चाहिए कि हम आज से ससार छोड कर भी रहेंगे तो ससार में ही और ससार में मन-मोहिनी माया नाम की एक ऐसी गुप्त शक्ति है जो चुम्बक की तरह जन मन को अपनी ओर खींचती रहती है। इसका रूप इतना सुहावना और लुभावना है कि बडे-बड़े सयमशीलों को भी घड़ी भर के लिए लुभा लेती और पथ भ्रष्ट बना देती है। सदा इससे बचे रहने की कोशिश कीजिएगा। जिस प्रकार कमल कीचड में पैदा होकर भी उससे दूर रहता है, उसी प्रकार दीक्षा-धारियों को ससार में रहते हुए भी उससे सर्वथा अलिप्त रहना है। इसे कभी नहीं भूलना चाहिए कि यह मुनि पद अपने पूर्व जन्मों के महान् पुण्यों से प्राप्त होने वाला महत्पद है। जो मनुष्य अपने हाथ में आए हुए चिन्तामणि रत्न को पत्थर समझ कर फेंक देता है, उससे बढकर और मूर्ख कौन होगा? इसी तरह जो इस पवित्र और महान् पद को पाकर भी स्खलना-त्रुटि करेगा तो उससे बढकर घृणित कार्य और क्या होगा? ऐसे मनुष्य कहीं सम्मान प्राप्त नहीं कर सकते, वे सब स्थानों से ठुकराए जाते हैं। उनके हृदय से आत्माभिमान, धर्माभिमान, परलोक-श्रद्धा, प्रतिज्ञा-पालन आदि-आदि अनेक सद्गुण एक साथ दूर

हो जाते हैं, जिनसे वे नितान्त हल्के और अधम माने जाने लगते हैं।

जो मुनि पद आप लोग आज स्वेच्छा से स्वीकार कर रहे हैं वह उभय लोक के लिए कल्याणकारी है। जो लोग शुद्ध अन्तःकरण और सच्चे हृदय से इसका आराधन करते हैं, वे आगे जाकर अक्षय सुख को प्राप्त करते हैं। जो अपनी आत्मा को पवित्र रखते हुए उसमें लगे हुए क्रोधादि विकारों को दूर करते हुए इस महान पद का आराधन करता है वह चिरकाल पावन अक्षय सुख को प्राप्त करता है जिसे पाकर फिर कुछ पाना शेष नहीं रह जाता।

इस तरह प्रसंगोचित उपदेश देने के बाद आचार्य श्री ने चारों ही दीक्षाधारियों का चतुर्विध श्री संघ के समक्ष दीक्षा विधान कराया। विधिपूर्वक प्रतिज्ञा पाठ सुनाकर चारों को व्रती बनाया। तत्काल हजारों के जयघोष के साथ दोनों नव मुनि पाट पर विराज गए और सतीजी रूपकुंवरजी को महासतीजी श्री धन कुंवरजी महाराज के नेसराय में कर तथा ब्यावर वाली दूसरी सतीजी को महासतीजी श्री राधाजी म. श्री सेवा में सौंप दिए।

इस प्रकार सानन्द दीक्षा महोत्सव समाप्त होने के बाद सब सन्त सतियाँ यथास्थान विहार कर गए और दर्शनार्थी श्रावक हर्ष गद्-गद् हृदय से अपने अपने घर को वापिस गए।

३७

अजमेर में पुनः वर्षावास

अजमेर सघ ने दीक्षा प्रसग पर बड़ी सेवा की। आचार्य श्री को इसी क्षेत्र में सयममार्ग के चार सहयात्री प्राप्त हुए। अत अजमेर वालों की स्वाभाविक इच्छा थी कि इस साल का चातुर्मास या वर्षावास आचार्य श्री का इसी नगर में हो। सयोगवश पूज्य श्री का विहार आगे नहीं हो सका। इधर श्री सुजानमल्ल जी म० आदि तीन सत जो दीक्षा के प्रसग में नहीं पधार सके थे, मारवाड से पूज्य श्री की सेवा में पधारे।

इसी बीच नागोर के प्रमुख श्रावक पूज्यश्री की सेवा में चातुर्मास की विनती लेकर आए। उन्होंने प्रार्थना की कि हमारा क्षेत्र बहुत अर्से से चातुर्मास के लिए तरस रहा है। सतों के चातुर्मास हुए कई युग हो गए हैं, अत कृपाकर इस वर्ष हमारी विनती स्वीकार की जाय। यदि आप शारीरिक बाधा से पधारने की स्थिति में न होवें तो कम से कम सुजानमलजी म० को ही हमारे यहा चातुर्मास की आज्ञा दे दी जाय।

नागोर के भावकों की भावना के उत्तर में पूज्यश्री ने मुनिश्री सुजानमलजी म० से बात कर साधु भाषा में चातुर्मास की स्वीकृति दी और फरमाया कि सुख शान्ति रही तो इस वर्ष में मुनिश्री आपके यहाँ चातुर्मासार्थ पधारेंगे। आप लोग पूरे उमंग के संग उनकी सेवा व धर्म का लाभ उठावें।

इधर पूज्यश्री के चातुर्मास के लिए अजमेर श्रीसंघ बहुत लम्बे अर्से से लालायित था। परन्तु कई कारणों से यह अभिलाषा आज तक पूरी नहीं हो सकी। इस वर्ष वह चिरप्रमनना सहसा पूर्ण हो आयी क्योंकि बाबा श्री हरखचन्दजी म० वयोवृद्ध होने से लम्बे विहार में असमर्थ थे, तथा पूज्यश्री भी ब्लडप्रेशर आदि शारीरिक कारण से विहार में कष्टानुभव करते थे। अतः अजमेर श्रीसंघ की विनती को बल मिल गया। आखिर संघ के आग्रह को मानकर पूज्यश्री ने अजमेर चातुर्मास की प्रार्थना स्वीकार करली और मोतीकटला में स्व० सेठ छगनमलजी, मगनमलजी के नये मकान में विराजमान हुए।

सेठ मगनमलजी ने अवसर देखकर एकबार पूज्यश्री से प्रार्थना की कि-गुरुदेव ! नव दीक्षित मुनियों को शिक्षण देने के लिए आपकी मर्यादानुसार मेरे यहां व्यवस्था है। क्योंकि पं० रामचंद्रजी 'भजमेर आदि का पाठ करने हवेली रोज आया करते हैं और वे एक दो घंटा इधर भी आ सकते हैं। अनुकूल जानकर पूज्यश्री ने स्वीकृति प्रदान की और प्रति दिन बालों लघुमुनि श्री हस्ती-मलजी म एवं श्री चौथमलजी म० उक्त पंडितजी से एक घन्टा पढ़ने लगे।

यद्यपि आजकल की तरह पहले चातुर्मास काल में दर्शनार्थियों की भीड उतनी नहीं होती थी, फिर भी धर्माराधना की प्रबल भावना से कुछ आ ही जाते थे। किन्तु उनमें दिखावे और सैर सपाटे की भावना कतई नहीं होती। यही कारण है कि आज की तरह भीड़ अधिक न होने पर भी धार्मिक प्रवृत्तिया उन दिनो अधिक होती थीं। पर्यूषण में हवेली के ऊपर वाले बडे होल में व्याख्यान होता था।

गर्मी कडक थी फिर भी लोगों ने साहसपूर्वक तपस्या में जोर लगाया। बाईयो की तो बात ही क्या ? भाइयो में भी कई तेला, चोला, एव पचोला के तप चल रहे थे। वर्षा की कमी और भयकर गर्मी की तीव्रता से सबकी कडी परीक्षा चालू थी। सवत्सरी के व्याख्यान में ज्योंही पूज्यश्री ने पार्श्वनाथ स्वामी का पच-कल्याण वाचते हुए पद्य फरमाया कि मेघ की झडी चालू हो गई। करीब तीन बजे तक व्याख्यान चलता रहा। पौपधव्रत के अतिरिक्त श्रावक सघ में जीवदया की पानडी भी की गई, उसमें भी एक अच्छी सी रकम हो गई। अजमेर के सेठ मगनमलजी, गभीर-मलजी आदि प्रमुख श्रावकों की भक्ति और बरेली वाले नाहर चादमलजी आदि चारों भाइयों का भ्रातृप्रेम एव धर्मानुराग सब के लिए अनुकरणीय था।

चातुर्मास के अन्तिम समय में सातारा-निवासी सेठ बालमुकुन्द जी मुथा के सुपुत्र सेठ मोतीलालजी मुथा पूज्यश्री के दर्शनार्थ अजमेर पधारे। आप उस समय साधुमार्गीय जैन कान्फ्रेन्स के

प्रधान मन्त्री थे। आपके साथ पं० दुःखमोचन झा जी भी थे, कि कान्फ्रेन्स के साप्ताहिक पत्र "जैन प्रकाश" का सम्प करते थे। पंडित जी अनुभवी विद्वान् थे और जैन रीति रिव से भी पूर्णतया परिचित थे। आप पूज्य श्री जवाहरलाल जी पूज्य श्री गणेशलाल जी म० व मुनि श्री घासीलाल जी म० के रहकर वर्षों तक अध्यापन रूपसेवा करचुके थे। सेठ मोतीलाल इन्हें अपने साथ इस विचार से लाए थे कि अगर पूज्य श्री आज्ञा हुई तो नवदीक्षित मुनियों के अध्ययन के लिये इनको नि कर देंगे। अवसर देखकर इन्होंने पूज्य श्री की सेवा में यह निवे किया। पूज्य श्री ने पंडित जी से कन्याण मंदिर के एक दो श्ल का अर्थ कराया और कुछ आवश्यक पूछताछ कर साधु मर्या- अपनी स्वीकृति प्रदान करदी।

परम प्रसन्नता और शान्ति के साथ अजमेर का चातुम समाप्त हो गया। लोगों ने जिस उत्साह और लगन से चातुर्मास कराया था उसकी निर्विघ्न सफलता पर जन स को पूर्ण संतोष और सुख प्राप्त हुआ।

३८

आचार्यश्री बीकानेर की ओर

कहावत प्रसिद्ध है कि "रमता योगी और बहता पानी" शुद्ध निर्मल और पवित्र होता है। किन्तु पानी का वहाव तो सदा एक निश्चित मार्ग से ही होता है, जब कि संत धारा के वहाव की दिशा अनेकेरूपता लिए होती है। आज कहीं तो कल कहीं। जब जिस क्षेत्र का पुण्य प्रबल हो उठता है, भागीरथी की तरह, उधर ही संतों के पावन कदम चल पडते है। जब जिस क्षेत्र में गए अपने अमूल्य उपदेशों से जन मन को प्रफुल्लित किए, धर्म स्नेह को सुदृढ बनाए तथा पापाचरण से बचने और पुण्याचरण में प्रवृत्त होने की नेक सलाह दी। फूलों की तरह गुण सुरभि विखेरते, भक्तजनों का हृदय हरते और अपनी अलौकिक छवि सबकी आखों में उतारते, निस्पृही और निर्मोही रूप मे एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर चल पडते हैं। इस प्रकार प्रत्येक भक्त को घर वैठे आराध्य के दर्शन सुलभ वन जाते है।

चातुर्मास समाप्त होते ही पूज्यश्री ने श्री लालचन्दजी, श्री सागरमलजी बालवय मुनि श्री हस्तीमलजी व चौथमलजी के संग नागोर की तरफ विहार कर दिया। आप पादू होते हुए मेड़ता पधारे। उधर से मुनिश्री सुजानमलजी म० भी नागोर का चातुर्मास समाप्त कर मुनि श्री भोजराजजी व मुनि श्री अमरचन्दजी के साथ मेड़ता पधार गए। लगभग एक सप्ताह भर सब के संग मेड़ता में विराजकर पूज्यश्री ने अपने साथी मुनियों के साथ नागोर की ओर प्रस्थान कर दिया। परन्तु बीच में ही एक सन्त के पैर में काटा चुभ जाने से लसवाना गांव में रुक जाना पड़ा।

इस बीच में थली से कुछ सतियां यहां आयीं—आचार्यश्री ने उनसे थली (बीकानेर) का मार्ग पूछा। सतियां बोलीं—"महाराज! मार्ग तो बड़ा कठिन है। चारों ओर केवल रेत ही रेत के टीले नजर आते हैं। तरुण सन्त तो फिर भी किसी तरह उधर आजा सकते हैं। परन्तु वृद्ध सन्तों का आना जाना तो कठिन ही लगता है। आराम होने पर कुछ सन्तों को साथ लेकर पूज्यश्री यहां से नागोर पधारे। नागोर में कुछ दिन विराज कर फिर अपने संकल्प को पूरा करने के लिए आपने बीकानेर की तरफ विहार कर दिया। मार्ग नवीन था तथा कठिनाइयां भी बीच २ में बहुत थीं फिर भी गोगोलाव अलाय नोखा देशनोक आदि गांवों को फरसते हुए आप भीनासर पधार गए और कनीरामजी बहादुर मलजी बाठिया के मकान में जा विराजे।

थली प्रान्त की यह विशेषता है कि यहां पानी और मेघ गह राई में उतरने पर प्राप्त होता है। एक बार ये प्राप्त हो जाने पर

पुन कभी घटने का नाम नहीं जानते। किन्तु इसके लिए पूरे परिश्रम की आवश्यकता होती है। सहज सरल भाव से इन दोनों वस्तुओं की प्राप्ति यहा असभव है। एक तो प्रदेशगत नैसर्गिक विशेषता और फिर ऐसे धार्मिक पथों का प्रचार, दोनों ने मिलकर वहा की जनता के इस स्वभाव को कट्टरता मे परिणत कर दिया। अत ये लोग विना जाने बूझे हर किसी मत को मानना और उनका वन्दन करना धर्म विरुद्ध समझते थे।

सचमुच में शिर झुकाने का एक महत्व है। जिनको एक बार शिर झुका दिया, समय आने पर उनके लिए सर्वस्व त्याग के लिए भी तैयार रहना चाहिए। बीकानेर प्रान्त के धार्मिक लोगों की करीब २ अपने देव गुरु पर ऐसी ही भावना पायी जाती है। पूज्यश्री कजोडीमलजी म० ने बीकानेर चातुर्मास किया था, उसके बाद पूज्यश्री विनयचन्दजी म० के शासनकाल तक सतो की कमी और शारीरिक बाधा के कारण आपश्री का पधारना इस ओर नहीं हुआ था। फलस्वरूप रावजी सवाईसिंहजी जैसे १-२ को छोड कर आपके कोई खास परिचित नहीं थे। फिर भी आपके प्रभाव और प्रसिद्धि से बीकानेर में हलचल उत्पन्न हो गई। कहावत भी है कि 'गुणा कुर्वन्ति दूतीत्व, दूरेऽपिवसता सता। केतकी गन्धमाघ्राय, स्वयमायान्तिपट्पदा"। इस लोकोक्ति के अनुसार वहा के प्रमुख श्रावक भीनसर भी पूज्यश्री से बातचीत करने को पहुँचे। उस समय भीनासर के प्रमुख सेठ कनीरामजी बाठिया और नेमचदजी जो पूज्यश्री की तन मन से सेवा करते थे, उन्होंने

बीकानेर वालों से कहा कि—"महाराज श्री बड़े भाग्यवान् और शुद्धाचारी हैं। अतः आप सबको बिना किसी संकोच के सेवा का लाभ उठाते रहना चाहिए। ऐसे संतों का अपने यहाँ बार बार पधारना संभव नहीं। यदि मौका हाथ से चला गया तो फिर पछताना पड़ेगा किन्तु यह सुनकर भी उन लोगों के विचारों में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ।

पूज्यश्री अपने विचारों के अनुसार कुछ दिनों तक भीनासर विराज कर बीकानेर पधारे और वहाँ मालूजी के नोहरे में संत नियमानुसार आज्ञा लेकर विराजमान हुए। प्रतिदिन व्याख्यान होने लगा और लालचंदजी ढढा "जयपुर" आनन्दराजजी सुराणा "जोधपुर" आदि के प्रयत्न से धीरे २ व्याख्यान की उपस्थिति बढ़ने लगी और महाराज की सचाई, निस्पृहता और यथार्थवादिता की छाप लोक मानस पर पड़ने लगी। दोपहर तथा रात को कुछ लोग शंका समाधान करने भी आते थे, जो संतोष लेकर वापिस जाते थे।

उस समय पूज्यश्री जवाहरलालजी म० सतारा विराजमान थे। जब उन्हें मालुम हुआ कि पूज्य शोभाचन्दजी म० बीकानेर पधारे हैं तो उन्होंने समयज्ञता से सेठ मोतीलालजी मूथा के मार्फत बीकानेर संघ को खास सूचना फरमाई कि मारवाड़ संघ को पूज्यश्री की सेवा का पूरा लाभ लेना चाहिए। महाराज श्री बड़े उत्तम और क्रियावान पुरुष हैं। उपरोक्त संदेश से संघ की भ्रान्ति और दुविधा टल मिट गई। लोग प्रेम से धर्मलाभ में हाथ बंटाने लगे।

स्थानीय वृद्ध लोग बोलने लगे कि महाराज ! आपके पूर्वाचार्य श्री जयमल्लजी म० ने ही यह क्षेत्र खोला है। पूज्यश्री रत्नचदजी म० भी कृपा कर यहा पधारे थे। किन्तु बीच के वर्षों में जबकि तेरापथी विविध प्रकार की भ्रम भावना फैलाते रहे, आप जैसे बडे सतों का पदार्पण इस तरफ नहीं हुआ। इन वर्षों में पू० श्री श्रीलालजी म० और उनके सतों का अधिक पधारना रहा और उनके प्रताप से यह क्षेत्र बच भी सका। आप मुनिराजों का पधारना नहीं होने से भावी पीढ़ी के लोग अपरिचित रह गए है।

उन दिनों अगर चदजी सेठिया कुछ अस्वस्थ रहा करते थे। उनकी प्रार्थना पर पूज्यश्री स्वय शिष्य मडली सहित दर्शन देने पधारे। सेठजी बड़े श्रद्धालु और धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे।

जब तक पूज्यश्री बीकानेर में रहे तब तक मुनि श्री हस्ती-मलजी म० को सस्कृत पढाने के लिए श्री सेठिया जैन विद्यालय से विद्वान् की व्यवस्था करदी गई थी। वहा से प्रतिदिन एक पडित आकर सस्कृत पढा जाते थे। लगभग २७ दिनों तक बीकानेर में विराजकर पूज्य श्री ने मारवाड की तरफ विहार कर दिया। आप भीनासर, देशनोक होते हुए होली चातुर्मास पर नागोर पधार गए।

३८

नागोर से जोधपुर

नागोर में पूज्यश्री के पधारने से धर्म ध्यान अच्छा हुआ। चातुर्मास का कल्प न होते हुए भी चातुर्मास जैसी चहलपहल हो गई। कुछ दिन बाद नागोर से विहार कर खजवाना होते हुए आप बड़लू पधारे। मुनिश्री सुजानमलजी म० को आयंबिल तप करना था अतः वे पीछे रह गए थे। कुछ दिनों तक बड़लू विराज कर पूज्यश्री ने जोधपुर की तरफ विहार कर दिया। हीरादेसर, सेवकी कुचेटी बड़ीपेड़ा सूरपुरा आदि गावों को पावन करते हुए आप महामन्दिर पधारे। आपके महामंदिर पधार जाने पर जोधपुर के श्रावक बहुत बड़ी संख्या में नित्य प्रति महामन्दिर आने लगे और साथ ही पूज्यश्री से जोधपुर शहर में पधारने की विनती भी करने लगे। कुछ दिनों तक महामन्दिर में विराजकर आप जोधपुर शहर में पधार गए और कस्तूरचन्दजी साहब सिंघवी के सुपुत्र श्री चनणमलजी के अत्याग्रह से शेषकाल उन्हीं के नोहरे में विराजे। आपके विराजते हुए श्रीमती सुगनकुंवर बाई पारख ने वैराग्य भाव से प्रेरित होकर महासती श्री लाभकुंवरजी महाराज के पास पूज्यश्री के समक्ष दीक्षा ग्रहण की।

दि
ना
न्त

यदि कहीं एकाध स्थान किराए न देकर संघ के धर्मध्यान हेतु खाली रक्खा जाय तो महान् लाभ का कारण हो सकता है। जोधपुर जैसे बड़े शहर में मोतीचौक में आपका खाली मकान है यदि चाहें तो आप सेठानीजी की स्मृति में धर्मध्यान के हेतु उसे सदा खाली रखकर अवश्य लाभ उठा सकते हैं"।

सेठानी को यह संकेत बहुत पसंद आया और उनकी इच्छा समझकर सेठजी न पूज्यश्री को कहा कि—महाराजश्री! अब से वह मकान खाली रहे और श्रावक लोग उसमें धम ध्यान करें तथा सत महासती वहां ठहरें ऐसी व्यवस्था करने की सूचना मैं जोधपुर दूकान पर कराद् गा।

पूर्वकथित संकल्प के अनुसार जब पूज्यश्री जोधपुर पधारे तब सेठजी ने वहां के मुनीम को लिख दिया कि पूज्यश्री को अपने मकान (पटी का नोहरा) मे विराजने की प्रार्थना करें। इधर रणजीतमलजी 'गांग' जो दूकान के खास वकील थे, उनको भी सूचना करादी कि कोई भी संत महात्मा पधारें उनको ठहरने के लिए रुकावट नही करें। इस प्रकार दोनों की भावना से पूज्यश्री पेटी के नोहरे पधार गए। पीछे गर्मी का मौसम आजाने से आगे कहीं विहार नहीं हो सका। और सं १६७५ में पूज्यश्री का चातुर्मास उसी मकान में हुआ।

पूज्यश्री के जोधपुर चातुर्मास म धर्म ध्यान का बहुत ठाठ लगा रहा। तीन बाइयों ने तो मासोपवास अर्थात् एक मास तक अनशन व्रत स्वीकार किया—जिनके शुभ नाम इस प्रकार थे—

सिरे कवरबाई (श्री गोकुलचन्द्रजी भडारी की धर्मपत्नी, मानबाई कोलरी वाले, तीसरी लाडबाई अधारी पोल। इन तीनों का यह साहस और उसकी सफलता पूज्यश्री के उपदेश तथा परम प्रभाव का ही प्रताप था। इस तरह उत्कृष्ट धर्मध्यान के साथ आचार्य श्री ने अपने अनुयायी सात अन्य मुनियों के सग चातुर्मास को हर्षमय वातावरण में पूर्ण किया।

इस चातुर्मास के पहले मुनि श्री हस्तीमलजी म० ने उत्तराध्ययन और नन्दी सूत्र का पूर्ण अभ्यास कर लिया था। सस्कृत पढ़ाने के लिए भी एक पडित प्रतिदिन एक घटे के लिए आते रहते थे जिससे सस्कृत ज्ञान का विकास निरन्तर जारी था।

चातुर्मास समाप्त होने पर आचार्य श्री विशाल मानव मेदिनी को गुलाब सागर पर अन्तिम मागलिक सन्देश सुनाकर महामन्दिर पधार गए।

४१

चातुर्मास का अपूर्व लाभ

जोधपुर के चातुर्मास में पूज्यश्री की सेवा करने के लिए हर सातारा के श्रावक श्री मच्छराज बागमार की धर्मपत्नी अपने दो पुत्रों के साथ जोधपुर आकर रही थी। आप बड़ी ही धर्मपरायणा, शान्तचित्त और श्रद्धालु महिला थी। आपकी भावना थी कि गुरुदेव की सेवा में इस वर्ष धार्मिक लाभ कुछ विशेष रूप में लिया जाय। आपने इसी सद्भावना से अपने ज्येष्ठ पुत्र को महाराज श्री की सेवा में कुछ सीखनकी प्रेरणा की। पुत्र में भी आप ही की तरह धर्म प्रेम था और ऐसा होना स्वाभाविक था। क्योंकि अधिकतर सतान अपने माता पिता के गुणों के अनुरूप ही होते हैं। आपके ज्येष्ठ पुत्र का नाम 'सुगनचन्द' जी था जो कम में चौदह वर्ष के एक सुन्दर किशोर थे। ये स्वभाव से सरल और सत्सग के प्रेमी थे। सत्संग की छाप जिसके चित्त पर पड़ जाती है फिर उसे दुनियावी नजारे मिथ्या नजर आने लगते हैं।

घर द्वार, कुटुम्ब परिवार, आहार विहार और वैभव प्रसार तथा सुसज्जित समार तभीतक आकर्षक और सलोने लगते है, जब तक दिल में इनके लिए अनुराग और आकाक्षा हो। जिस वस्तु से एक बार चित्तवृत्ति उतर जाती है फिर मुडकर उधर देखने को भी जी नहीं चाहता, चाहे वह कितना ही महत्वपूर्ण और मनोहर क्यों न हो। दूसरी बात ससार में सभी वस्तु सुन्दर और मनोहारी है, मगर इसका असल निर्णायक अपना २ मन है। जिसको जो पसद आए, उसकी दृष्टि मे जगत का सारा आकर्षण और लालित्य बस उसी में है।

कोई वैभव को ही सब कुछ समझ कर उसके पीछे पागल बना है और किसी को अबीर गुलाल की तरह दौलत उडाने में ही मजा आता है। किसी को छैल छबीलापन ही पसद आता है तो कोई अलख निरजन मस्त फकीर बनने में ही प्रसन्न दिखाई देता है। किसी की दृष्टि में ससार से बढकर सार और कुछ नहीं तो कोई ससार को असार और नि सार मानकर उससे बिल्कुल दरकिनार रहना चाहता है। कोई नारी को जागतिक सौन्दर्य का चरम प्रतीक और उपास्य मानता है और किसी की आखों में नारी विषपुतली और विषबेलि मम खटकने वाली सर्वथा त्याज्य वस्तु है। कहा तक गिनाऊ और कहूँ कि कौन ग्राह्य और त्याज्य तथा कौन सुन्दर एव असुन्दर है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है कि—"दधि मधुर मधु-मधुर, द्राक्षा मधुरा सिताऽपि मधुरैव। तस्यतदेवहि मधुर, यस्य मनो यत्र सलग्नम्"। अर्थात् दही, मधु, अगूर, शक्कर मिसरी आदि सबके सब मीठे ही हैं किन्तु वास्तव मे जिसका मन

जिधर चला जाय उसके लिए वही मधुर है। वस्तुतः किसी भी अच्छाई और बुराई तथा स्वास्थ्य और माप का अन्तिम निर्णायक व्यक्ति का मन है और मन पर वातावरण एवं संस्कार का दूरगामी असर होता है।

सत्संग के प्रभाव से लूणकरणजी के दिल में भी वैराग्य की बेल लहलहा उठी। परिणाम स्वरूप उन्होंने एक दिन अपनी माताजी के सामने दीक्षा लेने का स्पष्ट अभिप्राय जाहिर कर दिया। माता श्रद्धालु और धर्म परायण थी—पुत्र के इस परम वियोग मूलक अभिप्राय ज्ञापन से उसका मन तनिक भी विचलित और दुःखी नहीं हुआ। उसने सोचा—जब मेरा पुत्र स्वयं इस मार्ग को स्वीकार करना चाहता है तो फिर क्यों मैं अपनी स्वार्थ भावना के वशीभूत होकर उसके इस पवित्र मार्ग में रोड़े अटकाऊं व बाधक बनूं ?

रजलाणी के पन्नालालजी वाऊजा बाई के भाई होते थे उनसे राय ली गई तो उन्होंने भी यही कहा कि— 'जब स्वेच्छापूर्वक यह जगदुपकार अथवा आत्मसुधार का मार्ग अवलम्बन कर रहा है साधना और संयम को स्वीकार कर दीक्षाग्रहण करना चाहता है तो हमको या तुमको उसके इस शुभ प्रयास में कल्याणकारी मार्ग में रोड़ा नहीं डालना चाहिए। यों तो इस संसार में कीड़े की तरह हजारों लाखों जीवन बिताते हैं और प्रायः बुरे भले तौर पर सभी के जीवन बीत भी जाते हैं। किन्तु यह बात परमलाभ की है— हम सबकी इससे भलाई और बड़ाई है"।

अपने पुत्र की वलवती वैराग्य भावना एव शुभ चिन्तकों की शुभ कामना को अच्छी तरह समझ कर माता ने एक वीर माता की तरह ससार सागर से पार जाने की इच्छा वाले अपने पुत्र को सहर्ष स्वीकृति देदी। यद्यपि लूणकरणजी ही उसके जीवन के आधार थे। क्योंकि दूसरे बालक की अवस्था ८-६ वर्ष से अधिक नहीं थी। पति का स्वर्गवास हो चुका था। परन्तु इन सब बातों की परवाह किए विना इस आदर्श माता ने अपने तुच्छ स्वार्थ प्रेम को ठुकरा कर बुढापे का सम्बल, आशा के प्रतीक और एक मात्र वर्तमान जीवन के आधार अपने प्यारे पुत्र को दीक्षा ग्रहण करने की आज्ञा देदी। उसकी भावना थी कि वह दिन धन्य होगा जब मैं भी इस पवित्रतम मुनि मार्ग को ग्रहण करू गी। धन्य है ऐसी आदर्श माता और धन्य है हमारी यह भारत की वसुन्धरा जिसकी गोदी में ऐसी २ आदर्श रमणिया पैदा होती हैं।

चातुर्मास का यह लाभ अपूर्व था। जोधपुर सघ ने दीक्षा के समय आदि का विचार किया तो उसके लिये मार्गशीर्ष की पूनम का दिन सर्वथा ठीक जचा। आचार्य श्री को यह समय महामन्दिर में विताना था, अत वे वहीं ठहर गए।

४२

ज्वर का जोरदार आक्रमण

एक तो स्वभावत ही मानव शरीर को दुःखायतन कहा गया है। नानाविध व्याधियों की यह आवास भूमि है। न जाने किस घड़ी में कौनसा मर्ज उभर उठे और अचानक जोरोजोर खामोश बन जाय। फिर इसमें वृद्धावस्था की तो बात ही और होती है। इस अवस्था में तो मानो रोगों को कोई जैसे न्योता देकर बुलाए वैसे अनायास ही ये उपस्थित होते रहते हैं। आज कुछ तो कल कुछ कभी चैन नहीं, एक न एक रोग जोर पकड़े ही रहता है।

पूज्यश्री महामन्दिर में सुखशान्ति से विराजमान थे कि अचानक एक दिन आप पर बुखार का जोरदार आक्रमण हो आया। आपकी प्रकृति में एक बात पाई जाती थी कि आपको जब कभी ज्वर आता तो वह पूरे वेग और घबराहट के संग। इस अवसर पर भी वह उसी तेजी के साथ आया। तापमान १०५ डिग्री तक चढ़ चुका था। पास के संत और दर्शन वाले लोग इस बेहद ज्वरताप एवं घबराहट को देखकर आशंकित हो उठे थे।

समाचार पाते ही जोधपुर के प्रमुख श्रावक सेवा में आपहुँचे—योग्य उपचार से ज्वर कम हुआ और गुरु कृपा से कुछ ही दिनों में आचार्य श्री. प्रकृतिस्थ हो गए। लोगों का दुःख हर्ष और आनन्द में पलट गया।

४३

चमत्कारभरी घटना

महामन्दिर में एक ओसवाल विधवा बहिन रहती थी जो कि बड़ी ही धर्मपरायण स्त्री थी। अगर उस क्षेत्र में साधु साध्वी विराजित होते तो वह उनके दर्शन किए बिना मुंह में पानी भी नहीं डालती थी। उसने श्री गुलाबचन्दजी की दीक्षा के कुछ दिनों पूर्व पूज्यश्री की सेवा में आकर निवेदन किया कि "महाराज! आज मैंने प्रातःकाल यह स्वप्न देखा कि महासती श्री छोगाजी म० यहां पधारे हैं। अगर मेरा यह स्वप्न सत्य हो जाय और छोगाजी म० यहां पधार जांय तो मैं उनके पास दीक्षा ग्रहण कर लूंगी।" इस पर पूज्यश्री ने फरमाया कि- "अगर तुम्हारी भावना निर्मल है तो संयोग भी इस तरह का हो सकता है।" दैवयोग से उसी दिन छोगाजी म० का महामन्दिर पधारना हो गया। विधवा बहिन के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह संयम लेने को तत्पर हो गई। उसके साथ बड़ल की एक और बाई भी दीक्षा लेने को तैयार हो गई। इस तरह श्री गुलाबचन्दजी व इन दोनों बाइयों की अर्थात्

तीनों की दीक्षाए स १६७६ मार्गशीर्ष पूर्णिमा को जोधपुर शहर के बाहर मूथाजी के मन्दिर में सानन्द सम्पूर्ण हुई। पूज्यश्री ने लूणकरणजी को दीक्षित कर उनका नाम 'लक्ष्मीचन्दजी' स्थिर किया और उन्हें मुनि श्री सुजानमल्लजी म० की सेवा में शिष्य तरीके घोषित किया। इस तरह एक नवसत के रूप में मुनि नभो मडल में एक नक्षत्र की वृद्धि और हो गई। नव दीक्षिता सतिया भी यथायोग्य महासतीजी की सेवामें देदी गई। महामन्दिर वाली बाई को महासतीजी श्री छोगाजी के निश्राय में और वडलू, भोपालगढ की वाई किशनकवरजी को छोटे राधाजी म० के निश्राय में देकर उनकी शिष्या तरीके घोपित किया गया।

४४

ढलते दिन का स्थिरवास

कहावत है कि "सभी दिन कभी एक से हैं न होते—बहे हैं यहाँ साथ सुख दुःख के सोते।" अर्थात् संसार में सबके दिन सदा एक समान नहीं रहते। आज का क्रीड़ा कौतुकमस्त शिशु कल तरुणाई की विविध चिन्ताओं में गर्क दिखाई देता है। और कालान्तर में बुढ़ापा आने पर वही शिथिल और ठंडा बन जाता है। हमें चाहे पता चले या न चले, कालका अविराम चाक सदा चलता ही रहता है और उसके द्वारा हर क्षण और हर घड़ी हम में एक परिवर्तन होता ही रहता है। आजका स्वस्थ सबल और चंचल शरीर, कल अस्वस्थ बलहीन और स्थिर बन जाता है।

जिस कमनीय कुसुम को अभी २ अपनी सुन्दरता और सुगन्ध पर नाज़ था देखने वालों की आँखें बरबस जिस मधुर मनोहर छवि पर चित्र लिखित की तरह मुग्ध बन जाती थी, मन पुलकित से बाग बाग हो जाता था कालान्तर में उन्हें ही मुर्झाए, कुम्हलाए, पंखुड़ी विहीन निर्गन्ध रूप में मिट्टी की गोद में दम तोड़ते देखा जाता है।

बुढ़ापा या वृद्धावस्था वियोग अथवा चिरकालीन जुदाई का प्रबल सांकेतिक प्रतीक है। कर्तव्य निष्ठ इन्द्रियां जब शिथिल हो जाती और उनकी स्फूर्ति व उमंग मन्द पड जाती, तब उत्साह और साहस का तेजोमय विराट् जाग्रत रूप भी धीरे धीरे ठंडा और फीका पड जाता है। युवावस्था में जिन उद्दाम इन्द्रियों के निग्रह के लिए विविध संयमोपाय भी असफल और असिद्ध सिद्ध होते हैं—वृद्धावस्था में वे अनायास ही गति क्रियाहीन अशक्त एवं अक्षम बन जाती हैं। कहा भी है कि—प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किंकरिष्यति ? अर्थात् जब सभी भौतिक तत्व अपनी २ प्रकृतिगत बन जाते हैं तब संयम कैसा ?

वृद्धावस्था के कारण पूज्यश्री का शरीर कुछ तो दिनानुदिन सहज ही क्षीण हो चुका था, फिर अभी के इस बुखार ने उन्हें ऐसा कमजोर बना दिया कि वे आवश्यक कार्य करते हुए भी थकावट और परेशानी का अनुभव करने लगे थे। विविध परिषहों को सहन करते हुए कभी जो शरीर लम्बे लम्बे विहार में भी थकान और आलस्य का अनुभव नहीं कर पाता, वही अब जंगल जाते भी कष्ट का अनुभव करने लगता।

पूज्यश्री की यह हालत देखकर जोधपुर के प्रमुख नेता श्री शाहजी नवरतनमलजी, श्री चन्दनमलजी कोचरमुथा, श्री तपसी लालजी डागा एवं राजमलजी सुणोत आदि प्रमुख श्रावकों ने आचार्य श्री से प्रार्थना की कि—"गुरुदेव ! आपका शरीर अब विहार योग्य नहीं रहा, रोग और वृद्धावस्था ने आपकी शरण गहली है।

अतः कृपा कर स्थिरवास का मौका आप जोधपुर संघ को ही दिया जाय तो अच्छा है। यहाँ मकान और जंगल आदि की सब प्रकार से अनुकूलता है। साथ ही यहाँ विराजने से नवदीक्षित मुनियों का अभ्यास भी एक जगह व्यवस्थित हो सकेगा।

सम्प्रदाय के पूर्वाचार्य श्री रत्नचन्द्रजी म० ने भी अपना अन्तिम समय यहीं बिताया था। फिर आपकी तो यह जन्मभूमि है, इस वास्ते हम लोगों की प्रार्थना को अनसुनी नहीं करें।"

यह सुन कर आचार्यश्री ने फरमाया कि "आप लोगों की भक्ति और क्षेत्र की अनुकूलता का मुझे ध्यान है किन्तु जब तक शरीर काम दे रहा है, हृदय परिषह सहन के लिए सोत्साह है तब तक ग्रामा २ विहार करना ही योग्य प्रतीत होता है। साधु जीवन चलता फिरता ही ठीक होता है, स्थिरता तो अस्वर्थता की निशानी है। इसलिए अभी तो मैं स्थिरवास स्वीकार नहीं कर, स्थिति देख आगे का विचार पुनः प्रकट करूँगा। यह कह कर पूज्यश्री महामन्दिर से जोधपुर पधारे।

यहाँ पर स्वास्थ्य लाभ के लिए विविध औषधोपचार करने पर भी वृद्धावस्था के चलते शरीर की लाचारी और पीड़ा दूर नहीं हो पायी। फलतः जोधपुर के श्रावकों के अत्याग्रह से १६७२ माघ सुदि पूर्णिमा स आपने ठा ७ से जोधपुर में अपना स्थिरवास कर लिया।

४५

आचार्यश्री की देखरेख में संतों की अध्ययन व्यवस्था

जोधपुर में पूज्यश्री के स्थिरवास हो जाने पर सातारा निवासी सेठ श्री मोतीलालजी मूथा ने अपने साथ "जैन कान्फ्रेन्स" एव "जैन प्रकाश" में काम करने वाले प० दु खमोचन झा जी को नव दीक्षित मुनियों को पढ़ाने के लिए जोधपुर भेज दिया। मुनि श्री हस्तीमलजी म० लघु कौमुदी समाप्त कर चुके थे। अत उन्होंने पडितजी से सिद्धान्त कौमुदी का अध्ययन आरम्भ किया। इनके साथ २ मुनि श्री चौथमलजी म० व नव दीक्षित मुनि श्री लक्ष्मी-चन्दजी म० भी अध्ययन करने लगे। आचार्य श्री इन सबके अध्ययन और विद्यानुरागी लगन को देख २ कर प्रसन्न रहते थे।

असाध्यरूप धारण कर लेगी तथा निरन्तर अतिशय पीड़ा पहुंचा एगी। अत: आप फरमावें तो मैं आपरेशन करने के लिए सेवामें हाजिर हो जाऊं।"

पूज्यश्री ने पहले तो बहुत कुछ टार बहटार किया लेकिन अंत में श्रावकों के अत्याग्रह और भविष्य पीड़ा के अनुमान से आप रेशन के लिए हां भरदी। डा० अमृतलालजी ने उसी निमत्त समय गाठ पर दवा लगा कर सुतीक्ष्ण औजार से गांठ को चीर दिया और मलहम पट्टी करदी। जिस से थोड़े दिनों मे उसका दर्द मिट गया।

-

४८

सांघातिक चोट

इस मानवीय शरीर की दशा यों तो हरदम दयाजनक है, किन्तु इसकी पहली और अन्तिम दशा अर्थात् शैशव एवं वार्द्धक्य महज विवशता और पराधीनता की होने से और भी नितान्त दयनीय है। इन दोनों दशाओं में मनुष्य जानते हुए भी कुछ नहीं जानता, चाहते हुए भी कुछ नहीं कर पाता, सम्हलते हुए भी नहीं सम्हल सकता और आपत्तियों से बचने की कामना रखते हुए भी नहीं बच पाता। इस अटल नियम के अपवाद आचार्यश्री भी नहीं हो सके।

बुढापे से शरीर बिल्कुल अशक्त बन गया था। चलने, फिरने, उठने बैठने सब में कष्ट का अनुभव होता था। इस पर मेद गाठ की वेदना भी पूर्णरूप से मिट नहीं पाई थी कि एक रात को सोए हुए पाट पर से नीचे गिर गए। चोट गहरी लगी। गर्दन के नीचे की हड्डी पर अत्यधिक जोर पडा। सभी सन्त पूज्यश्री के पास आ गए थे, परन्तु रात होने के कारण सब मौन थे। सवेरा होते

४६

आँख का आपरेशन

प्रथम बार पूज्यश्री की आँख का आपरेशन जयपुर में हुआ था। परन्तु वह अधिक सफल नहीं हो सका। फिर भी किसी तरह काम चल जाता था और बिना चश्मा के भी आप बारीक अक्षरों का भी वाचन कर लेते थे। जोधपुर में जब डा० निरंजननाथजी ने देखा तो उन्होंने बतलाया कि आंखों में खराबी है। अतः आपरेशन करा लेना ठीक होगा अन्यथा आंख अधिक खराब हो जाने की संभावना है।

आखिर सोच विचार के बाद मूलसिहजी के नोहरे में डा निरंजननाथजी के द्वारा पुनः आपरेशन कराया गया जो कि पूर्ण सफलता से समाप्त हुआ। डाक्टरों ने पूज्यश्री को चश्मा लगाए बिना शास्त्रादि वांचने की मनाही करदी थी फिर भी वे समझते थे कि सब लोग फैशन के फेर में पड़ कर कहीं चश्मे का इस्तेमाल न करने लग जाँय? इसलिए स्वयं की आवश्यकता रहते हुए भी यथासाध्य इससे बचते रहते थे और अनिवार्य समय पर ही उसका उपयोग करते थे।

४७

मेद का आपरेशन

"एकस्य दु खस्य न यावदन्त, गच्छाम्यह पारमिवार्णस्य। तावत् द्वितीय समुपस्थित मे छिद्रेष्वनर्थां बहुली भवन्ति" अर्थात् जब तक एक दु.ख समुद्र का पार नही पाता तब तक दूसरा उपस्थित हो जाता है। कहावत मशहूर है "छिद्रों मे अनर्थ बढते हैं।" सबल एव स्वस्थ शरीर के पास रोग फटकने भी नहीं पाता और जरासी भी शरीर में कमजोरी आयी कि अनेको रोग आ खडे होते हैं।

पूज्यश्री के पीठ पर भी कुछ समय से एक मेद की गाठ हो गई थी। जिसने अब तक तो कुछ भी दु ख नहीं दिया था। परन्तु इधर कुछ दिनों से वह बढ गई और दर्द रूप से पीड़ा देने लगी। श्रावकों ने रायसाहब कृष्णलालजी बाफना के सुपुत्र डा० श्री अमृतलालजी बाफना को पूज्यश्री की गाठ दिखाई। अच्छी तरह से देखलेने के बाद उन्होंने पूज्यश्री से कहा कि—महाराज! यह गांठ आपरेशन के बिना ठीक नहीं हो सकेगी। और अगर आपरेशन नहीं कराया गया तो फिर यह भीतर ही भीतर बढकर

अतः कृपा कर स्थिरवास का थोड़ा लाभ जोधपुर संघ को ही दिया जाय तो अच्छा है। यहाँ मकान और संगत आदि की सब प्रकार से अनुकूलता है। साथ ही यहाँ विराजने से नवदीक्षित मुनियों का अभ्यास भी एक जगह व्यवस्थित हो सकेगा।

सम्प्रदाय के पूर्वाचार्य श्री रत्नचन्द्रजी म० ने भी अपना अन्तिम समय यहीं बिताया था। फिर आपकी तो यह जन्मभूमि है इस वास्ते हम लोगों की भावना को अनसुनी नहीं करें।"

यह सुन कर आचार्यश्री ने फरमाया कि "आप लोगों की भक्ति और क्षेत्र की अनुकूलता का मुझे ध्यान है, किन्तु जब तक शरीर काम दे रहा है हृदय परिषह सहन के लिए सोत्साह है, तब तक धारा २ विहार करना ही योग्य प्रतीत होता है। साधु जीवन चलता फिरता ही ठीक होता है, स्थिरता तो बस मर्यादा की निशानी है। इसलिए अभी तो मैं स्थिरवास स्वीकार नहीं कर, स्थिति देख आगे का विचार पुनः प्रकट करूँगा। यह कह कर पूज्यश्री महामन्दिर से जोधपुर पधारे।

यहाँ पर स्वास्थ्य लाभ के लिए विविध औषधोपचार करने पर भी वृद्धावस्था के चलते शरीर की लाचारी और पीड़ा दूर नहीं हो पायी। फलतः जोधपुर के श्रावकों के अत्याग्रह से १६५५ माघ सुदि पूर्णिमा से आपने ठा० ७ से जोधपुर में अपना स्थिरवास कर लिया।

४५

आचार्यश्री की देखरेख में संतों की अध्ययन व्यवस्था

जोधपुर में पूज्यश्री के स्थिरवास हो जाने पर सातारा निवासी सेठ श्री मोतीलालजी मूथा ने अपने साथ "जैन कान्फ्रेन्स" एव "जैन प्रकाश" में काम करने वाले प० दु खमोचन झा जी को नव दीक्षित मुनियों को पढाने के लिए जोधपुर भेज दिया। मुनि श्री हस्तीमलजी म० लघु कौमुदी समाप्त कर चुके थे। अत उन्होंने पण्डितजी से सिद्धान्त कौमुदी का अध्ययन आरम्भ किया। इनके साथ २ मुनि श्री चौथमलजी म० व नव दीक्षित मुनि श्री लक्ष्मी-चन्दजी म० भी अध्ययन करने लगे। आचार्य श्री इन सबके अध्ययन और विद्यानुरागी लगन को देख २ कर प्रसन्न रहते थे।

४४

ढलते दिन का स्थिरवास

कहावत है कि "सभी दिन कभी एक से हैं न होते—बहते हैं यहाँ साथ सुख दुःख के सोते।" अर्थात् संसार में सबके दिन सदा एक समान नहीं रहते। आज का क्रीड़ा कौतुकमस्त शिशु कल तरुणाई की विविध चिन्ताओं में गर्क दिखाई देता है। और कालान्तर में बुढ़ापा आने पर वही शिथिल और ठंडा बन जाता है। हमें चाहे पता चले या न चले, कालचक्र अविराम चक्र सदा चलता ही रहता है, और उसके द्वारा हर क्षण और हर घड़ी हम में एक परिवर्तन होता ही रहता है। आजका स्वस्थ सबल और चंचल शरीर, कल अस्वस्थ, बलहीन और स्थिर बन जाता है।

जिस कमनीय कुसुम को अभी २ अपनी सुन्दरता और सुगन्ध पर नाज़ था देखने वालों की आँखें बरबस जिस मधुर मनोहर छवि पर चित्र लिखित की तरह मुग्ध बन जाती थी, मन मुराद से बाग बाग हो जाता था क्षणान्तर में उन्हें ही मुर्झाए, कुम्हलाए, पंखुड़ी विहीन निर्गन्ध रूप में मिट्टी की गोद में दम तोड़ते देखा जाता है।

बुढ़ापा या वृद्धावस्था वियोग अथवा चिरकालीन जुदाई का प्रबल सांकेतिक प्रतीक है। कर्तव्य निष्ठ इन्द्रियां जब शिथिल हो जाती और उनकी स्फूर्ति व उमग मन्द पड़ जाती, तब उत्साह और साहस का तेजोमय विराट् जाग्रत रूप भी धीरे धीरे ठडा और फीका पड़ जाता है। युवावस्था में जिन उद्दाम इन्द्रियो के निग्रह के लिए विविध सयमोपाय भी असफल और असिद्ध सिद्ध होते है— वृद्धावस्था में वे अनायास ही गति क्रियाहीन अशक्त एव अक्षम बन जाती हैं। कहा भी है कि—प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रह किंकरिष्यति ? अर्थात् जब सभी भौतिक तत्व अपनी २ प्रकृतिगत बन जाते हैं तब सयम कैसा ?

वृद्धावस्था के कारण पूज्यश्री का शरीर कुछ तो दिनानुदिन सहज ही क्षीण हो चुका था, फिर अभी के इस बुखार ने उन्हें ऐसा कमजोर बना दिया कि वे आवश्यक कार्य करते हुए भी थकावट और परेशानी का अनुभव करने लगे थे। विविध परिषहों को सहन करते हुए कभी जो शरीर लम्बे लम्बे विहार में भी थकान और आलस्य का अनुभव नहीं कर पाता, वही अब जगल जाते भी कष्ट का अनुभव करने लगता।

पूज्यश्री की यह हालत देखकर जोधपुर के प्रमुख नेता श्री शाहजी नवरतनमलजी, श्री चन्दनमलजी कोचरमुथा, श्री तपसी लालजी डागा एव राजमलजी मुणोत आदि प्रमुख श्रावकों ने आचार्य श्री से प्रार्थना की कि—"गुरुदेव ! आपका शरीर अब विहार योग्य नहीं रहा, रोग और वृद्धावस्था ने आपकी शरण गहली है।

अतः कृपा कर स्थिरवास का मोका लाभ जोधपुर संघ को ही दिया जाय तो अच्छा है। यहां मकान और जंगल आदि की सब प्रकार से अनुकूलता है। साथ ही यहां विराजने से नवदीक्षित मुनियों का अभ्यास भी एक जगह व्यवस्थित हो सकेगा।

सम्प्रदाय के पूर्वाचार्य श्री रत्नचन्द्रजी म० ने भी अपना अन्तिम समय यहीं बिताया था। फिर आपकी तो यह जन्मभूमि है, इस वास्ते हम लोगों की प्रार्थना को अनसुनी नहीं करें।"

यह सुन कर आचार्यश्री ने फरमाया कि "आप लोगों की भक्ति और क्षेत्र की अनुकूलता का मुझे ध्यान है, किन्तु जब तक शरीर काम दे रहा है, दृढय परिषह सहन के लिए सोत्साह है तब तक थोड़ा २ विहार करना ही योग्य प्रतीत होता है। साधु जीवन चलता फिरता ही ठीक होता है, स्थिरता तो असमर्थता की निशानी है। इसलिए अभी तो मैं स्थिरवास स्वीकार नहीं कर, स्थिति देख आगे का विचार पुनः प्रकट करूँगा। यह कह कर पूज्यश्री महामन्दिर से जोधपुर पधारे।

यहां पर स्वास्थ्य लाभ के लिए विविध औषधोपचार करने पर भी वृद्धावस्था के चलते शरीर की लाचारी और पीड़ा दूर नहीं हो पायी। फलतः जोधपुर के श्रावकों के अत्याग्रह से १९०७ माघ सुदि पूर्णिमा से आपने ठा० ७ से जोधपुर में अपना स्थिरवास कर लिया।

४५

आचार्यश्री की देखरेख में संतों की अध्ययन व्यवस्था

जोधपुर मे पूज्यश्री के स्थिरवास हो जाने पर सातारा निवासी सेठ श्री मोतीलालजी मूथा ने अपने साथ "जैन कान्फ्रेन्स" एव "जैन प्रकाश" मे काम करने वाले प० दु खमोचन झा जी को नव दीक्षित मुनियों को पढ़ाने के लिए जोधपुर भेज दिया। मुनि श्री हस्तीमलजी म० लघु कौमुदी समाप्त कर चुके थे। अत उन्होंने पडितजी से सिद्धान्त कौमुदी का अध्ययन आरम्भ किया। इनके साथ २ मुनि श्री चौथमलजी म० व नव दीक्षित मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी म० भी अध्ययन करने लगे। आचार्य श्री इन सबके अध्ययन और विद्यानुरागी लगन को देख २ कर प्रसन्न रहते थे।

४६

आँख का आपरेशन

प्रथम बार पूज्यश्री की आँख का आपरेशन जयपुर में हुआ था। परन्तु वह अधिक सफल नहीं हो सका। फिर भी किसी तरह काम चल जाता था और बिना चश्मा के भी आप बारीक अक्षरों का भी वाचन कर लेते थे। जोधपुर में जब डा० निरंजननाथजी ने देखा तो उन्होंने बतलाया कि आँखों में खराबी है। अतः आपरेशन करा लेना ठीक होगा अन्यथा आँख अधिक खराब हो जाने की संभावना है।

आखिर सोच विचार के बाद मूलसिंहजी के मोहरे में डा० निरंजननाथजी के द्वारा पुनः आपरेशन कराया गया जो कि पूर्ण सफलता से समाप्त हुआ। डाक्टरों ने पूज्यश्री को चश्मा लगाए बिना शास्त्रादि बांचने की मनाही करदी थी फिर भी वे समझते थे कि मत लोग फैशन के फेर में पड़ कर कहीं चश्मे का इस्तेमाल न करने लग जाँय ? इसलिए स्वयं की आवश्यकता रहते हुए भी यथासाध्य इससे बचते रहते थे और अनिवार्य समय पर ही उसका उपयोग करते थे।

४७

मेद का आपरेशन

"एकस्य दु खस्य न यावदन्त, गच्छाम्यहं पारमिवार्णस्य। तावत् द्वितीय समुपस्थित मे छिद्रेष्वनर्था. वहुली भवन्ति" अर्थात् जव तक एक दु ख समुद्र का पार नहीं पाता तव तक दूसरा उपस्थित हो जाता है। कहावत मशहूर है "छिद्रों में अनर्थ वढते हैं।" सवल एव स्वस्थ शरीर के पास रोग फटकने भी नहीं पाता और जरासी भी शरीर में कमजोरी आयी कि अनेकों रोग आ खडे होते है।

पूज्यश्री के पीठ पर भी कुछ समय से एक मेद की गाठ हो गई थी। जिसने अव तक तो कुछ भी दु ख नहीं दिया था। परन्तु इधर कुछ दिनों से वह वढ गई और दर्द रूप से पीड़ा देने लगी। श्रावकों ने रायसाहव कृष्णलालजी वाफना के सुपुत्र डा० श्री अमृतलालजी वाफना को पूज्यश्री की गाठ दिखाई। अच्छी तरह से देखलेने के वाद उन्होंने पूज्यश्री से कहा कि—महाराज! यह गाठ आपरेशन के विना ठीक नहीं हो सकेगी। और अगर आपरेशन नहीं कराया गया तो फिर यह भीतर ही भीतर वढ़कर

असाध्यरूप धारण कर लेगी तथा निरन्तर अतिशय पीड़ा पहुंचा एगी। अत आप फरमावें तो मैं आपरेशन करने के लिए सेवामें हाजिर हो जाऊं।'

पूज्यश्री ने पहले तो बहुत कुछ टार मटार किया लेकिन अंत में श्रावकों के अत्याग्रह और भविष्य पीड़ा के अनुमान से आप रेशन के लिए हां भरदी। डा० अमृतलालजी ने उसी नियत समय गांठ पर दवा लगा कर सुतीक्ष्ण औजार से गांठ को चीर दिया और मलहम पट्टी करदी। जिस से थोड़े दिनों में दूसरा दुख मिट गया।

४८

सांघातिक चोट

इस मानवीय शरीर की दशा यों तो हरदम दयाजनक है, किन्तु इसकी पहली और अन्तिम दशा अर्थात् शैशव एव वार्द्धक्य महज विवशता और पराधीनता की होने से और भी नितान्त दयनीय है। इन दोनों दशाओं में मनुष्य जानते हुए भी कुछ नहीं जानता, चाहते हुए भी कुछ नहीं कर पाता, सम्हलते हुए भी नहीं सम्हल सकता और आपत्तियों से बचने की कामना रखते हुए भी नहीं बच पाता। इस अटल नियम के अपवाद आचार्यश्री भी नहीं हो सके।

बुढ़ापे से शरीर बिल्कुल अशक्त बन गया था। चलने, फिरने, उठने बैठने सब में कष्ट का अनुभव होता था। इस पर मेद गाठ की वेदना भी पूर्णरूप से मिट नहीं पाई थी कि एक रात को सोए हुए पाट पर से नीचे गिर गए। चोट गहरी लगी। गर्दन के नीचे की हड्डी पर अत्यधिक जोर पडा। सभी सन्त पूज्यश्री के पास आ गए थे, परन्तु रात होने के कारण सब मौन थे। सवेरा होते

ही डा० शिवनाथचन्द्रजी को बुला लाए। गर्दन की हड्डी टूट जाने से उन्होंने पाटा बांधा और वह पाटा लगातार कई दिनों तक बंधा रहा और धीरे धीरे वह ठीक हो गया।

समय पाकर आचार्यश्री इन विषम वेदनाओं से मुक्त हुए और आवश्यक स्वास्थ्य भी लाभ किया। भक्तजनों को आशा बंध चली कि अब कुछ दिनों तक आचार्यश्री का दर्शन, उपदेश, संलाप एवं संगति का अनमोल लाभ मिल पाएगा।

४६

जीवन की अन्तिम संध्या

आना जाना, जन्म मरण और उदय अस्त का सम्बन्ध अटल और अनिवार्य है। द्वन्द्वात्मक जगत में प्रत्येक वस्तु के पीछे उसका प्रतिस्पर्धी तत्व भी छाया की तरह साथ लगा रहता है। दिवस की स्वर्णिम प्रभा रजनीमुख मे गहन कालिमा के रूप में सर्वथा पलट जातीं और उषाकाल में वही गाढानुराग रंजित नजर आती है। मधुऋतु के मोहक बहार के बाद ग्रीष्म के तप्त लू का उपहार भी सर उठाना पडता है। खिलखिलाती जगमगाती चादनी पर कृष्णवर्णा-अमा-यामिनी का आक्रमण भी बना ही रहता है। फूल दो दिन सौरभ बहार बिखेर कर आखिर मिट्टी मे मिल ही जाते है। पावस की गीली रसीली वसुन्धरा ग्रीष्म ऋतु में रसहीन और भयानक दरारों वाली बन जाती है। इसी तरह जन्मोत्सव की मधुर शहनाई सुनने के बाद मौत के मातम भी मनाने ही पडते हैं।

ससार मे कुछ भी अगर निश्चित है तो वह मृत्यु ही। मृत्यु को दार्शनिको और कवियो ने महाविश्राम की उपाधि दे रक्खी

है। चिरकाल तक जीवन समाप्त पर विकट मोरचे में श्रम और विमाग लगाते २ जब तन मन थक जाता, तब मृत्यु की सुखद गोद में अनन्त काल के लिए प्राणी विश्राम करने के लिए चला आता है। मृत्यु जीवन का शृंगार और मलय पर अमसर करने का प्रकाश स्तम्भ है। हम जो कुछ भी अपनी जीवन यात्रा में फूंक कर कदम रखते, हिंसादि जघन्य कार्यों से भय खाते और नीति मार्ग का अनुसरण करते हैं—य सब मृत्यु के प्रभाव और प्रताप से ही संभव होते हैं। संसार में जीवन के साथ यदि मृत्यु का अटल सम्बन्ध न जुड़ा हो तो जीवन का सारा आकर्षण और मोहनीय प्रभाव कुछ भी कीमत नहीं रक्खेगा। चारुचन्द्रिका चित्त को तभी तक चकित और चमत्कृत करती है जब तक जगत में प्रगाढ़ अन्धकार का अस्तित्व है।

हमारे इस भुवन के साथ ही मत्य नाम लगा हुआ है। यहां के प्रत्येक आने वाले को जाना भी अवश्य पड़ता है। चाहे उसके वियोग में हमारी आंखें सावन भादव की झड़ी लगायें अथवा उसके बिना हमारी अवर्णनीय बड़ी से बड़ी क्षति ही हो जाने या उसके अभाव में हमारा जीवन सूना २ और खोया २ ही क्यों न रहे। लेकिन निश्चित समय आने पर हम उसके महाप्रयाण या इस लम्बी यात्रा को घड़ी भर के लिए भी रोक रखने में हर्गिज समर्थ नहीं हो सकते। बड़े २ डाक्टर और यान्त्रिक मान्त्रिक माथा पच्चा कर रह गए, लेकिन मौत के मर्ज में आज तक कुछ भी नहीं कर सके। विज्ञान ने रहस्यात्मक प्रकृति के कण कण का खासा

परिचय पालिया किन्तु वह भी अपने इस पच भौतिक-वियोग विश्लेपरण-रहस्य से अब तक सर्वथा अज्ञात और अछूता ही बना हुआ है।

हम अपने सत्कार्यों या धवल सुयश वृत्तियों से भले अमरता हासिल करलें, अपनी सस्मृति और मधुर याद की छाप प्रत्येक के दिल पर गहरी से गहरी जमादें, लेकिन एक बार तो इस पच-भौतिक तत्वों को अटल रूप से बिछुडना ही पडेगा, यह निश्चित और ध्रुव सत्य है।

स० १६८३ का चातुर्मास बाबा मूलसिंहजी के नोहरे में हुआ। आचार्य श्री का शरीर एक तो बुढ़ापा और दूसरा एक न एक प्रबल रोगाघात से अत्यधिक कमजोर पड़ गया था। शरीर धारण पोपण का मूल तत्व आहार भी बहुत कम हो गया था। आ० कृ० १२ के सायकाल आपको कुछ तकलीफ मालूम हुई, चित्त घबराने लगा। उस दिन आपने आहार ग्रहण भी नहीं किया। दुर्बलता घड़ी-घडी बढती ही जा रही थी और नौबत यहां तक आ पहुँची कि सहसा वाक्शक्ति बिल्कुल बन्द हो गई।

जो वाक्शक्ति आज तक हजारों लाखों भूले भटके मन को धर्म मार्ग पर सुदृढ कर, उसकी अज्ञानता और अविवेक को समूल नाट कर, अहर्निश अमृत वाणी का प्रचार कर और सतत प्रभु गुणगान में प्रमोद पाती रही, वही आज चिर विश्रान्ति के गह्वर मे सदा के लिए विलीन हो गई। जन जन को त्राण

चरण मंगल वचन श्रवण करानेवाली यह पवित्र वाक् शक्ति इस तरह स्वयं ठन्डी और शान्त पड़ गई।

यद्यपि आचार्य श्री कृतकृत्य और सफलता सिद्ध एकत्र्य पुरुष थे। उनके लिए किसी तरह की चिन्ता और सोच उपयुक्त नहीं था, फिर भी लघुवय संतों के लिए जो थोड़ी सी गोचरी आई जिसे भी कोई ग्रहण करना नहीं चाहते थे। संघपति के आसन्न विरह की संभावना प्रत्येक श्रावक और संत के मुख मंडल पर स्पष्ट परिलक्षित हो रही थी।

अमावस्या के मात:काल से ही तकलीफ बढ़ती जा रही थी। सन्तों ने उपयुक्त अवसर जान कर संथारा भी करा दिया। नगर के हजारों नरनारी इस पुण्यात्मा "समरता के पुजारी" के अन्तिम दर्शन को आ जा रहे थे। आचार्य श्री के पास एक अच्छी भीड़ सी लग रही थी लेकिन सब के चहरे पर उदासी और खामोशी झलक रही थी। चिरदिनों का सहायक स्वरूप कल्याणकामी और सत्पथ प्रदर्शक महापुरुष मौन भाव से आज सदा के लिए नयनों से ओझल होने जा रहा था। जिनकी चरण शरण में आज तक शान्ति और सान्त्वना मिलती रही, जिनकी वचन गंगा के पुण्य प्रब प्रवाह ने त्रिविध ताप-संताप को दिल से दूर किया जिनकी संगति छाया न माया को अमित हित और उपकार पहुँचाया। जिनके लिए किसी कवि का यह कथन सर्वथा सुसंगत और सत्य जचता है कि— 'उपकारन क कछु अत नहीं, छण ही छण जो विस्तार ह। मुख्य ह हम ही तुमको तुमयो हमरी

सुधि नाहीं विसारे है । ऐसे उपकार परायण पुरुप पु गव का चिर-प्रयाण भला क्यों न मन को क्लान्त, श्रान्त और उन्मन वनादे ?

सस्कृत के किसी कवि ने ठीक ही कहा है कि जव अन्त समय आता है तव अपनी वे सारी शक्तिया, जिनके द्वारा हम जगत में वहुत कुछ कर सके, विल्कुल वेकाम वन जाती हैं, उनसे कुछ भी सहायता प्राप्त नहीं हो सकती। "जैसे—"अव-लम्वनाय दिन भर्तु रभून्न पतिष्यत करसहस्त्रमपि" अर्थात् सूर्य जव डूवने लगता है, तव उनकी वे हजारों किरणें कुछ भी मदद नहीं करतीं जो उदय काल में चमक दमक दिखाती रहती है। इसी तरह जव यह आत्मा (जीव) शरीर से प्रयाण करने लगता है, उस समय सारी इन्द्रिया शिथिल और मन्द पड जाती हैं। जो सवल जीवन में सतत असभव को भी सभव करने में तत्पर दिखाई देती हैं।

दिन के वारह वजे का समय था आचार्य श्री के पास में सतगण समयोचित स्वाध्याय सुना रहे थे। एकाएक एक वमन हुई और मध्याह्न की उसी प्रखर वेला मे इस पवित्र एव आदर्श मानव जीवन का अन्तिम पर्दा गिर गया। काया पिंजड पडा रह गया और 'सोहका पछी' अपने जाने पहचाने देश को छोड अन जाने लोक की ओर उडगया। चिरकाल तक अपने ज्ञान, तप एव वैराग्य के प्रभाव से जन मानस को शान्त और स्थिर रखने वाला महापुरुप इस असार ससार को छोड कर सदा के लिए यहां से विदा हो गया।

लोग सजल विस्फारित नयनों से देखते रह गए मगर अमरता का पुजारी मर्त्य भुवन को छोड़ कर अपने अमर लोक के लिए चल चुका था। उसे क्या चिन्ता कि हमारे लिए ही ये इतनी सारी भीड़ यहां इकट्ठी है ? कवि ने ठीक ही कहा है कि मौत का जब बुलावा आता है तब— 'रुके न पल भर मित्र पुत्र माता से नाता तोड़ चले। लैला रोती रही और कितने मजनूं मुंह मोड़ चले।"

सर्वत्र शोक और विषाद के काले बादल छा गए। मुनिगण भी खिन्न बनगए क्योंकि चिरवियोग की व्यथा सुतीक्ष्ण और गहरी असरकारक होती है। कितना भी आत्म तत्व का गहरा चिन्तन हो शास्त्रीय अशोच्यवस्तुओं का अध्ययन एवं विवेक व्यवहार का मनन हो फिरभी जब चिरजुदाई का प्रसंग आता है तो— 'गतासूनगतासूं श्च नानुशोचन्ति पंडिता" की पंक्ति भुला जाती है और उस समय विवेक पर विरह व्याकुलता की विजय हो कर रहती है। यह अनिवार्य नियम है देहधारी महामोहाभिभूत मानव मन का। पुरुष की परीक्षा ऐसे ही समय हुआ करती है। सामान्य जन जहां ऐसी स्थितियों में हर्ष एवं शोक में उन्मत्त बन सुधबुध खो बैठता है, ज्ञानी जन ऐसे समय में जीवन तुला को समतोल एवं दिमागी संतुलन को बनाए रखने की कोशिश करते हैं। उनका बाह्य व्यवहार भी शोकोत्पादक या भावभाव प्रमारक नहीं हो पाता। शोक मोहनीय का उदय होने से जो क्षणिक खेद होता है, उसको भी वे ज्ञान दृष्टि से भुलाने का यत्न करते हैं। मोह ग्रस्त संसारी जनों की तरह उन्मत्त

रोना पीटना नहीं होता। वे साधना के वाद होने वाली जीवन-समाप्ति को मृत्यु महोत्सव मानते हैं। इसी कारण उदयवश खिन्न हृदय बने हुए सन्त उस दिन अनशन व्रत से रह कर भी ज्ञान द्वारा अपने आपको सभाल सके।

सन्त और नगर में विराजमान सतियों ने 'लोगस्स' का निर्वाण कायोत्सर्ग किया। साधु साध्वी और श्रावक श्राविका जिसे भी देखो उस दिन पूज्यश्री के गुणमय जीवन के चिन्तन में ही एक रस दिखाई देते थे। जोधपुर के अतिरिक्त आसपास गावों के लोग भी विमारी की खवर से दर्शनार्थ आ पहुँचे थे। वरेली के रतनलालजी नाहर भी अन्त समय की सेवा में उपस्थित थे।

जोधपुर शहर भर में, जहा आचार्य श्री ने देह धारण कर अन्त में उसे वहीं विसर्जन भी कर दिया, वडी उदासी बनी रही। सारे वाजार और व्यापार वन्द रक्खे गए। रविवार होने से राजकीय कार्यालय सहज रूप में ही वन्द थे। हलवाईयो ने भी अपनी भट्टी वन्द रक्खी। किसी प्रकार का व्यवसाय उस दिन शहर में चलने नहीं पाया। क्या जैन और जैनेतर सबके सब इस महा पुरुप की वियोग व्यथा का समान अनुभव कर रहे थे। सव के मानस में शोक समा गया था तथा सवका मुख उदास था। इस मरण मे भी महत्व था जो मरण के वाद मोती की तरह साफ २ झलक रहा था।

५०

अन्तिम संस्कार

आचार्य श्री का अन्तिम शव संस्कार जोधपुर की जैन एवं जैनेतर जनता ने बड़े ही समारोह के साथ सम्पन्न किया। पूज्यश्री जैसे ही पुनीत-पुरातन विभूति थे संस्कार का प्रकार भी वैसा ही भव्य बनाया गया था। सरकारी लवाजमा के साथ छ सात हजार की जनता का यह दृश्य बड़ा ही हृदय हारी था। सभी के मुंह से आचार्य श्री के गुणगान सुनाई पड़ रहे थे। प्रत्येक व्यक्ति की दृष्टि में जोधपुर में ही आविर्भाव और यहीं पर तिरोभाव का महत्व अत्यधिक चमत्कार पूर्ण था।

चांदी की एकावन खण्डी विमान में पूज्यश्री के शरीर को रख कर नगर के मुख्य मार्गों से घुमाते कैलाश (दाहस्थान) में ले जाया गया। बीच २ में रुपए पर पैसे व चांदी के फूल की उछाल की गई और चन्दन खोपरा आदि से आपका दाह संस्कार किया गया।

यद्यपि अपने नश्वर शरीर से आज आचार्य श्री हम लोगों के बीच नहीं हैं किन्तु उनका यशोरूप सदा अमर अमर रहेगा यह ध्रुव सत्य है।

आचार्य श्री की शवयात्रा का एक विशाल दृश्य

परिशिष्ट

परिशिष्ट

आचार्य श्री की कुछ खास विशेषताएं

मानव जीवन में गुणों और विशेषताओं का ही महत्व है, चमत्कार की ही पूजा है, कला की ही वन्दना है। यदि ये सब मानव जीवन से अलग कर लिये जाय तो मनुष्य और पशुओ के जीवन मे अधिक श्लाघनीय और अभिनन्दनीय पशु जीवन ही माना जायेगा। क्योंकि पशु के शारीरिक बल, वैभव से जगत को बहुत बड़ा लाभ प्राप्त होता है।

वस्तुत गुण की विशेषता ही सच्ची मानवता है। जिनमें कोई गुण नहीं वे मनुष्य नहीं मानवाभास हैं। जिस प्रकार एक सादा बेडोल पत्थर भी चित्रकारिता और नक्काशी से अति सुन्दर और मनोरम बन जाता है, जिसे देख-देख कर आंखे नहीं थकतीं, मन नहीं भरता और अतृप्ति की प्यास हृदय से दूर नहीं होती, वैसे किसी गुणवन्त पुरुष को देख तथा उसकी उपदेशमयी वाणी सुन कर दर्शन व श्रवण की लालसा भी तीव्रतम बन जाती है।

पूज्यश्री शोभाचन्द्रजी महाराज भी ऐसे ही गुणगणों और विविध विशेषताओं से विभूषित विभूति थे। जिनके कारण आज भी उनके अल्प परिचय में रहा हुआ व्यक्ति बरबस उनके गुणों को स्मरण कर स्नेह-विह्वल बन जाता है। परमत सहिष्णुता वत्सलता, गम्भीरता, सरलता, सेवाभाविता, विनयशीलता, मर्मज्ञता, आगमज्ञता और नीतिमत्ता ये आचार्य श्री के गुणों में मुख्य थे। आपके ये गुण समस्त साधु समाज में आदर्श के प्रतीक कहे जा सकते हैं। आपके गुणों पर मुग्ध होकर किसी सज्जन के विद्वान् ने एक कविता लिखी जो पठनीय है कि—

> मुविनीतावमर्षमदे कति संभवन्ति जनाः,
> शमलेशवशमितों वराश्च समस्ति धमघनाः।
> अधिकारमल्पमवाप्य कल्पतर्य चरस्यनिशम्,
> मति शान्ति नीरधिरप्यसाविह मौनमासस्नुक्रम्॥
> मुनिरेष यथा विमुरत्र नयो॥ १॥

अर्थात् दुनियां में कितने ही मनुष्य ज्ञान के लव लेश मात्र से भी अभिमान के मारे मदोन्मत्त बन जाते हैं कितने धर्मधन शम-शान्ति के लेश से भी क्षमासागर बन बैठते हैं, कितने अल्प तम अधिकार पाकर भी दिन रात अन्याय करते हैं दुनियां की ऐसी रीति रहते हुए भी पूज्यश्री शोभाचन्द्रजी म० जो बुद्धि और शान्ति के समुद्र तुल्य थे फिर भी अपनी महत्ता प्रदर्शन में सदा मौन ही बने रहते थे। इस तरह सचमुच समर्थ आचार्य श्री इस जगत में एक निराले ही तपस्वी थे।

आपका कद लम्बा, शरीर सुडौल, भाल विशाल, बड़ी आंखें, दीर्घ भुजा, लम्बी अगुली, अर्द्ध चन्द्राकृति नख, तेज पूर्ण भव्य मुख-मण्डल और श्याम वकिम भौंहे बरबस दर्शकों के आकर्षण की वस्तु बनी रहती थी। कहा भी है कि—"यत्राकृतिस्तत्र गुणा. वसन्ति" अर्थात् जहा आकृति होती है वहीं प्राय. गुण भी पाये जाते है। इस तरह आप सचमुच में जीती जागती मानवता के एक ज्वलन्त प्रतीक रूप थे।

"परमत सहिष्णुता"—

आज के युग मे सर्वत्र फैली विषमता और कलह द्वन्द का मूल कारण "अपना सो ठीक" का सकीर्ण पक्षपात ही प्रतीत होता है। "जो ठीक सो अपना" इस मोहन मन्त्र को लोग भूल से गए हैं। पूज्यश्री एक सम्प्रदाय विशेष के आचार्य होते हुए भी सदा "परमत सहिष्णुता से काम लेते थे। कभी दर्शनार्थ आने वाले भाइयों को आपने जात या धर्म मान्यता के बाबत कुछ नहीं पूछा। अतएव सैकडों परमतावलम्बी भी अभेद बुद्धि से आपकी सेवा और सगति का पुण्य लाभ लूटते रहते थे। आप किसी के शील स्वभाव को भलीभाति परख कर उसे समयोचित उपदेश देते थे। यही कारण था कि विविध आचार विचार के लोग आपके प्रवचन श्रवण में रस लेते रहते थे।

वत्सलता—

वात्सल्य भाव का अद्वितीय उदाहरण जननी को कहा गया है। मा की वात्सल्यमयी गोद या आचल की छाह में कितना भी

यशस्वी कारा और वेदना विषाद में डूबा मन घड़ी भर के लिए सुप्रसन्न और संतुष्ट बन जाता है। इस वत्सलता में न जाने कौनसी मोहिनी और माधुरी भरी है जो सुधबुध भुला देती है। अपनापन की वास्तविक परिपुष्टि वत्सलता में ही होती है।

पूज्यश्री वात्सल्य प्रदर्शन में बेजोड़ थे। कोई कैसा भी संतप्त मानस बन कर क्यों न आये-हँसते हुए आपके पास से लौटता था। दुःखी दिल को दर्द मिटाने में आपके उपदेश पुरजोर और असरदायक होते थे। अपनी मधुरवाणी से आगन्तुकों की व्यथा मिटाने में पूज्यश्री प्रसिद्धि प्राप्त बन थे।

एक बार पूज्यश्री के परिचय प्राप्त किसी वैष्णवमतावलम्बी विद्वान् के पास घर से तार आया कि—"तुम्हारा एक मात्र लड़का असाध्य रोग से पीड़ित है और तेरी याद करता है, वास्ते जल्दी आओ। इस दारुण खबर ने उसके पैर तले की धरती खिसका दी। वह घबड़ाए मन से पूज्यश्री के पास आया और अपनी विपदा अर्ज की। उसकी रोनी सूरत और घबड़ाई हालत देख कर आपने उसे समझाया कि विद्वान् तो आपद् ग्रस्त मनुष्य को धैर्य और शान्ति प्रदाता होता है फिर तुम अधीर क्यों बन रहे हो ?

यह सुन कर वह बोला कि महाराज ! अभी मेरा मन स्वस्थ नहीं है सुधबुध ठिकाने नहीं है, अपत्य स्नेह के मोह ने मुझे इस कदर मुग्ध बना दिया है—कर्त्तव्य और विवेक का भान अभी मुझसे कोसों दूर है। मैं मजबूर नहीं हूँ।

आचार्यश्री ने मधुर मुस्कान के संग फरमाया कि भाई ! यह तो संसार है इसमें न तो आना अपने हाथ और न जाना ही।

तुमने देखा होगा कि कितने को यहां पुत्र मुख दर्शन की लालसा पूरी न हुई और कितने को अल्पकाल के लिए ही चपला चमक की तरह यह सयोग प्राप्त हुआ तथा कितने को हर हालत से घर भरपूर है। इन तीनों दशाओं को जो विवेक पूर्वक सहने को तैयार है, उसका कभी बुरा नहीं हो सकता। तुम तो जानते ही हो कि—"रोग-शोक-परीताप-बन्धन व्यसनानिच। आत्मापराध वृक्षाणा फलान्येतानि देहिनाम्। अर्थात् रोग, शोक, सताप, बधन और व्यसन ये तो आत्मापराध वृक्ष के फल हैं। कोई दूसरा इन्हें क्या कर सकता है? धैर्य रखो साहस और हिम्मत से काम लो।

यह सुनकर वह पडित प्रसन्नता पूर्वक वापिस चला गया और कुछ समय के बाद उसे घर की सूचना मिली कि लड़का स्वस्थ हो गया। आने की जरूरत नहीं है।

आपकी वत्सलता से प्रभावित होकर अक्सर अन्य धर्मावलम्बी जन भी दु ख दर्द की घड़ियों में आपकी सत्प्रेरणा और सहानुभूति प्राप्त करने के लिये आते ही रहते थे। बाण भट्ट ने ठीक ही कहा है—"अकारण मित्राणि खलु भवन्तिसताहृदयानि" अर्थात् सन्तों के हृदय पीड़ितों के लिए बिना कारण के मित्र होते है।

पूज्यश्री सचमुच वात्सल्य मूर्ति थे, उनके पास सप्रदाय भेद की तुच्छ मनोवृत्ति नहीं थी। यही कारण है कि जयपुर, जोधपुर के स्थिरवास समय में जो भी सत वहा पधारे पूज्यश्री के पास आये बिना नहीं रहे। स्व० पूज्य श्री माधो मुनिजी म० के साथ

से आपका गहरा प्रेम था। इनके सिवाय श्री पूरणमलजी म० इन्दरमलजी म० भी आपके प्रेम से प्रभावित थे।

पंजाब के स्वर्गीय मयारामजी म० और आपका जोधपुर में साथ वर्षावास हो चुका है। अजमेर प्रान्त के स्वामीजी श्री गजराजजी म० और धूलचन्दजी म० आदि से भी बड़ा प्रेम था।

मारवाड़ के विविध संप्रदायों के साथ भी आपका मधुर संबंध था। यही कारण है कि समाज में अनेकता होते हुए भी उस समय मारवाड़ में एक ही पक्खीपर्व मनाये जाते। स्वामीजी श्री संतोकचन्दजी म० की ओर से एक नकल आपके पास आ जाती या आपकी ओर से कभी उनके पास भिजवा दी जाती फिर पूज्य अनमलजी म० के भी परामर्श लेकर मारवाड़ की चारों संप्रदायों में एकसा पक्खी पत्र प्रचारित होता था। जोधपुर विराजते समय स्वामी श्री दयालजी म० आदि जिनका भी वहाँ आना हुआ पूज्यश्री से मिलकर सभी प्रसन्न हो जाते थे। विभिन्न संप्रदायों के साधु साध्वी जो प्रेम लेकर जाते समाज पर भी इसका गहरा असर होता था।

लोगों को सम्प्रदाय भेद में भी कटुता दृष्टिगोचर नहीं होती। यह आप जैसे महापुरुषों के वात्सल्य गुण का ही प्रभाव था।

समता—

किसी वैदिक विद्वान् ने ठीक ही कहा है कि "समत्वमाराधन मच्युतस्य" अर्थात् समताराधन ही भगवान की सच्ची पूजा है। आज सारी दुनियां समता स्थापन के लिए दृढ़ संकल्प दिखाई

देती है फिर भी जन जन का मन समताराधन से अलग थलग बना हुआ है। विश्व में सर्वत्र विषमता ही विषमता है। इसी के परिणाम स्वरूप आज वातावरण में सर्वत्र तनाव, हृदय में अशान्ति और प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क में आग या गर्मी नजर आती है। जब तक सच्ची समता जन मानस में स्थान नहीं बना पाएगी, तब तक वास्तविक सुख की आशा मात्र दुराशा है।

आचार्यश्री मे समता तिल में तेल की तरह परिव्याप्त थी। आपके पास सधन या निर्धन, विरोधी या समर्थक, अपना या पराये का कोई भेद दृष्टिगत नही होता था। दीनहीनों के प्रति दुत्कार, सेठ साहूकारों के लिए सत्कार और भक्तों के प्रति चमत्कार आचार्यश्री के दरबार का आधारभूत सिद्धान्त नहीं था। आपका व्यवहार सदा सबके लिए समान ही रहता।

भारतीय सस्कृति में सत हृदय समता का प्रतीक माना गया है। पूज्यश्री उस प्रतीकहृदय के आदर्श कहे जाने योग्य थे। द्वेष और वैमनस्य की भावना सभव स्वप्न में भी आपके पास फटकने नहीं पायी। गीता गायक का यह वचन कि—"समोऽह सर्व भूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति चाऽप्रिय" का अधिकाश आप में घटित होता था।

आगम पाठ और संस्कृताभ्यास—

आप आगम रुचि प्रधान थे, प्रतिदिन उत्तराध्ययन, नन्दीसूत्र आदि का प्रात काल जल्दी स्वाध्याय कर लिया करते थे। आगम पाठ का उच्चारण इतना शुद्ध और स्पष्ट करते थे कि जैसे सब पाठ

अभ्यस्त हों। अशुद्ध उच्चारण की ओर आपका कड़ा ध्यान था। क्योंकि आपने पूज्यश्री विनयचन्द्रजी म० की सेवा में ह्रस्व, दीर्घ बिंदु विसर्ग के लिए भी अनुशासनात्मक शिक्षा प्राप्त की थी। आपकी आगम पाठ के प्रति ऐसी रुचि थी कि समय २ पर पास के संतों को यही प्रेरणा करते कि—"इन्हो विकथा एवं प्रमाद में समय मत गंवाओ, इधर उधर की पुस्तकों में करोड़ों श्लोक पढ़ने का भी वह महत्त्व नहीं है जो संजीवनी रूपा आगम के एक श्लोक पढ़ने का है। अतः स्वाध्याय में नित्य थोड़ा बहुत समय देना ही चाहिए"। आपकी पवित्र प्रेरणा और रुचि का ही प्रभाव है कि बड़े बूढ़े संतों में भी स्वाध्याय की प्रवृत्ति जाग उठी। और सब साधु नित्य स्वाध्याय किया करते। आपका संस्कृत में भी प्रवेश अच्छा था अतः भर्तृहरि, सिंदूर प्रकर, शंकराचार्य की चर्पटमंजरी और विविध ग्रन्थों के सुभाषित प्रसंग प्रसंग से प्रवचन में फर-माया करते थे।

संस्कृत प्राकृत और हिन्दी के समयसार नाटक, मूधरशतक आदि के हजारों पद्य आपको अभ्यस्त थे।

सहनशीलता—

जोधपुर विराजते समय एक बार अजमेर के एक श्रावक ने आपके सामने एक संत का जीवन चरित्र उपस्थित किया जिसके १४४ वें पृष्ठ पर लिखा था कि— 'आचार्य श्री शोभाचन्द्रजी म ने स्वयं पूज्यश्री ... ...का ऋणी रहूँगा ऐसा कहा था। हम आशा करते हैं कि पूज्य श्री शोभाचन्द्रजी साहिब तथा उनकी

सम्प्रदाय के साधु और श्रावक अपने वचनानुसार पू०श्री के परिवार पर ऐसा ही भाव रखेंगे। ऋणी शब्द का प्रयोग माता, पिता एव गुरू जैसे किसी परमोपकारी महान् आत्मा के लिए सुसगत और उचित कहा जा सकता है। क्योंकि जीवन निर्माण में इन सबके नैसर्गिक उपकार का बहुत बडा हाथ होता है। ऐसे महत्व पूर्ण शब्द का प्रयोग सामान्य रूप में करना न सिर्फ शब्द महात्म्य का उपहास करना है वरन अपनी अज्ञता और सकीर्णता का प्रदर्शन करना भी है। इतना ही नहीं साम्प्रदायिक सघ के लिए भी लेखक ने टिप्पणी दी।

इस ओछे शब्द प्रयोग एव कलुषित व्यवहार वचन से साधु और श्रावकों में काफी रोष उत्पन्न हुआ। अभी कुछ दिन पूर्व ही तो बीकानेर का कटु प्रकरण शान्त, हुआ था फिर इस बात से साम्प्रदायिक मानस को उभरने का सयोग एव सहयोग मिल गया। पू० हुक्मीचन्दजी म० की सम्प्रदाय के दो दल इस प्रान्त में भी प्रसार पा रहे थे।

किन्तु पूज्यश्री ने इस पर कुछ महत्व नहीं दिया। उल्टे उन्होंने श्रावकों को समझाया कि भाई! भक्त को अपने गुरु की महिमा बढाने का पूर्ण लक्ष्य सम्मुख होता है। उस भावातिरेक में वह सीमा लाघ कर भी गुरुजनों का महत्व गायन करने लगता है— इससे उसका अनुचित विचार तो नहीं आका जा सकता। फिर ऐसे सामान्य विषय पर इतनी गभीरता और अभिरोप पूर्ण हृदय से सोचना कम से कम मुझे तो उचित नहीं जचता। कहा भी

है कि—"निज कवित्त केहि लागन नीका। सरस होंहि अथवा अति फीका"। यह सुनकर उस भाई ने कहा–नहीं महाराज! उनका यह लिखना सरासर अनुचित और बेढंगा है। इसको चुपचाप सहन करने से एक सम्प्रदाय की धमनवारी एवं दूसरे का दब्बू-पन जाहिर होता है। आप तो क्षमासागर और महान् हो, परन्तु हम संसारी तो समता के इतने समीप नहीं पहुँचे हुए हैं, जहाँ मानापमान, स्तुति निन्दा और छोटे बड़े का भेद मिट जाता है। हम लोगों से कोई यह कहे कि हमारी सम्प्रदाय के मुनि "ऋणी हो" तो यह कभी बर्दाश्त नहीं होगा। फिर आज जबकि सम्प्रदायिक झगड़े चालू हैं, तब ऐसी बात लिखकर जनता को भ्रम में डालना अपराध निन्दनीय है। इसे लेखक से खुलासा करवाना चाहिए। वातावरण इतना उग्र बन गया कि जयपुर जोधपुर, अजमेर नागौर ब्यावर आदि प्रमुख क्षेत्रों में सर्वत्र इसकी चर्चा घर कर गई। छोटे सतों में भी इस पर ऊहापोह होने लगा—शास्त्रार्थ के लिए विद्वानों के मन भी खिल उठने लगे। कोई कुछ कहता कोई कुछ। अन्त में जयपुर लेखक से पत्र व्यवहार किया गया। पहले तो उन्होंने इस चीज को टालने का यत्न किया किन्तु जब साम्प्रदायिक संघ का क्षोभ बढ़ा हुआ देखा तो आखिर उन्होंने यह स्वीकार किया कि भूल से ऐसा लिखा गया अगले संस्करण में इसका सुधार किया जायगा। संभवतः एक पर्चा स्पष्टीकरण का भी निकाला। मगर पूज्यश्री मन में बिना किसी तरह का क्षोभ लाए सदा उभर दिलों का समाधान करने का ही उपदेश देते रहे। उनका कहना था कि समाज में रागद्वेष पैदा हो, ऐसा कोई काम

नहीं करना चाहिए। किसी ने कुछ उल्टी सीधी सुनादी तो इसमें अपना क्या बिगडा। "मुखमस्तीति वक्तव्य दश हस्ता हरीतिकी" का आशय सहृदय श्रोता भलीभाति अनायास ही समझ लेते है। फिर जब लेखक भूल मजूर कर आगे सुधारने को कबूल कर लेता है तब और क्या चाहिए। अब सबको शान्ति रखने में ही शोभा है। अपनी सम्प्रदाय में पर्चेबाजी के दगल आज तक नहीं हुए अत आप लोगों को अपने आदर्श के अनुरूप ही चलना चाहिए। इस तरह सारी कटुता मधुरता में परिणत हो सकी।

ऐसा ही एक दूसरा उदाहरण—जोधपुर मे विराजते समय अनेक युवको को प्रतिक्रमण का अभ्यास कराया गया। उस समय पाठ शुद्धि के लिए अनेक पुस्तकों मे से एक वैसी पुस्तक चुनी गई, जिसमे सम्प्रदाय और उसके पूर्वाचार्य पर अपशब्द का प्रयोग किया गया था। स्वामीजी भोजराजजी म० ने पुस्तक सामने रखी तो आपश्री ने फरमाया कि अपने को गुणग्रहण की दृष्टि रखनी चाहिए जो चीज नहीं लेनी हो उसे छोड देना चाहिए। जिसका वर्षों पहले मारवाड की गांवों मे वहिष्कार था, उसी पुस्तक को ग्रहण करना गुणग्राहिता एव समता का ज्वलत नमूना है।

पूज्यश्री की सर्वप्रियता—

आपका जीवन सर्वप्रिय था। राजस्थान की जैन जनता ही नहीं बल्कि देशान्तर के लोक भी आपके स्पृहणीय गुणों पर मुग्ध थे। इसका एक उदाहरण—

जब आपके स्वर्गवास का समाचार तार के जरिए ब्यावर संघ को मिला तो वहां के प्रमुख कार्यकर्ताओं ने व्यापार धंधा बंद कर दिया और शोक सभा का आयोजन किया। उस समय मारवाड़ सम्प्रदाय के प्रसिद्ध पं० स्वामीजी श्री जोरावर मल्ल जी म यहां विराजमान थे दूसरी ओर धर्म विजयजी म के सुशिष्य मुनि इन्द्रविजयजी भी विराजमान थे। साहिबचंद जी सुराणा के द्वारा पू० के स्वर्गवास की बात सुन कर जैन स्थानक में आयोजित शोक सभा में पं० मु० श्री जोरावरमल्ल जी म० के साथ श्री इन्द्रविजयजी म० ने भी वहां आकर श्रद्धांजलि दी—इस प्रकार दोनों सम्प्रदाय के संतों का मिलजुल कर पूज्य श्री के प्रति शोक प्रदर्शित करना उनके राजस्थान में सर्व प्रियता का एक ज्वलन्त नमूना है।

आचार्य श्री की विचारधारा

पूज्य आचार्यश्री के प्रवचन, प्राचीन शैली में होते हुए भी नूतन हृदय को प्रसन्न एव पुलकित बनाने वाले होते थे। आपके उपदेश में सरलता के साथ गभीर ज्ञातव्य बातें भी कूट २ कर भरी होतीं थीं। यही कारण था कि श्रोतृ हृदय उन्हें सुनकर आत्म विभोर हो उठते। आपके पास जब कोई सामान्य श्रोता उपस्थित होता तो आप उसे प्रथम सत्सग गुण की ओर आकृष्ट करते, सत्सग की महिमा बताते और समझाते कि जीवन के क्षणभगुर समय को सत्सग के द्वारा बहुमूल्य और सफल बनाना चाहिए। सत्सग महिमा में जैन शास्त्रों के अतिरिक्त वैदिक विद्वानों के वचन भी आप उद्धरण में दिया करते थे।

जैसे—

एक घडी आधी घडी, अरू आधिन में आध।
तुलसी सगत साध की, हरे कोटि अपराध॥
"सत्सगत पल की भली, जो यम का धका न खाय"

"आठ घड़ी काम की तो दो घड़ी राम की" ।
व्यर्थ सुबह शाम की, है घड़ी हराम की ॥
कुसंगत में रामचरण तू मत बैठे जाय ।
जैसे हाथ लुहार की, कोई पड़े पतंगयो आय ।
पड़े पतंग्यो आय गांठ का कपड़ा जाले ।
कुसंगी कुसंग आगली पैठ बिगाड़ ।
तातें संगत कीजिए गधी गंध सुवास ।
कुसंगत में रामचरण तू मत बैठे जाय ॥

सत्संग या प्रभुभजन में बिताया हुआ एक क्षण भी अशुभ कर्म के कुफल से बचाने में सहायक होता है । पानी सींचन के लिए सौ हाथ की डोरी कुए में चली गई किन्तु दो अंगुल के हस्तस्थित छोर से वह पानी के साथ पूरी की पूरी बाहिर निकल आती है । अगर वह छोटा सा छोर भी छूट गया तो न सिर्फ पानी के लिए हाथ मलते रहना पड़ेगा वरन सौ हाथ की डोरी से भी बिना जल के हाथ धोना पड़ेगा । यही स्थिति हमारे मानव जीवन के समय की है । दो घड़ी का थोड़ा सा भी काल सत्कर्म की साधना में बिताया तो वह समय पर बहुत सरक्षण करने वाला सिद्ध होगा । (समय की अल्पता को नगण्य समझना उसकी महत्ता की अवहना जाहिर करना है ।)

(७)

व्याकरण की शिक्षा के लिए आप फरमाया करते थे कि व्याकरण पढ़ना बड़ा कठिन है । साधारण श्रम से व्याकरण

विषयक ज्ञान उपार्जन करना वालू से तेल निकालना है। राजस्थानी भाषा में कहा भी है कि—

"घाल गले में गूदड़ी, निश्चय माडे मरण।
घो, ची, पू, ली, नित करे, जद आवे व्याकरण॥

अर्थात् सर्दी गर्मी की परवाह छोडकर जब विद्यार्थी गले में गूदडा डाले मरने की सी तैयारी करता है, "घो" का अर्थ पाठ को खूब रटना, "ची" का बार २ याद करना, "पू" उसके रहस्य को समझने के लिए पूछना, और "ली" याने लिखना इतनी बातें साध लेने पर ही व्याकरण का बोध होता है। इसीलिए किसी ने कहा है कि—आमरणान्तो व्याधिर्व्याकरणम"। विद्यार्थी के लिए आराम तो विषवत् वर्ज्य है। नीति भी कहती है कि—

"सुखार्थी चेत्त्यजेद् विद्या,विद्यार्थी चेत्त्यज्येत्सुखम्"पूरा पसीना बहाकर श्रम करने वाला ही व्याकरण का जानकार हो सकता है।

(३)

धर्म पर विवेचन करते हुए आप फरमाते थे कि—"दुनिया में सब लोग धर्म २ करते हैं मगर विरले ही धर्म के मर्म से परिचित होते। धर्म का मार्ग बडा बीहड और बाका है--बिना जाने हुए कि धर्म कैसे उत्पन्न होता, किससे वृद्धि पाता और किससे रक्षित एव किससे नाश पाता है, गला फाड धर्म २ चिल्लाने से कुछ भी नहीं होता। एक चतुर किसान की तरह उपरोक्त चार बातों की जानकारी किए बिना धर्म का सच्चा स्वरूप समझना बडा कठिन है। जैसे कि किसी सस्कृत के विद्वान् ने भी कहा है--"कथमुत्पद्यते

धर्मः, कथं धर्मो विवर्धते। कथं च स्थाप्यते धर्मः, कथं धर्मो विनश्यति।

इसके उत्तर में कहा गया है—"सत्येनोत्पद्यते धर्मः, दयादानेन वर्धते। क्षमया च स्थाप्यते धर्मः, क्रोध लोभाद् विनश्यति"।

उपरोक्त श्लोक को लेकर पूज्य श्री विवेचन किया करते कि सत्य से ही धर्म की उत्पत्ति होती है। जहां सत्य नहीं वहां दूसरे व्रत कैसे रह सकते हैं? पूर्वाचार्यों ने कहा है कि चार महाव्रत के चूके हुए मन की शुद्धि हो सकती है किन्तु दूसरे व्रत का जो चूका है, उसकी शुद्धि नहीं होती। सत्य पर आरूढ़ हुए बिना जीवन सुधार असंभव है। बीज को अंकुरित होकर बढ़ने के लिए जैसे—अनुकूल हवा व प्रकाश पानी की आवश्यकता रहती है ऐसे धर्मवृद्धि के लिए दयादान की भी आवश्यकता है। दया और दान से ही धर्म की प्रभावना होगी। जहां दयादान नहीं, वहां धर्म ही कैसा? दया और दान से धर्मरूप फल का विकास होता है।

साधक को घर एवं परिवार में विविध प्रतिकूल परिस्थितियों से सामना करना पड़ता है उस समय यदि वह सहिष्णुता से काम ले सके तभी धर्म ठहरता है। अन्यथा सहज हिंसादि दुर्भाव गर्त में गिरने से बचना कठिन हो जाता है। अतः धर्म की रक्षा के लिए क्षमा को आवश्यक माना गया है। दशविध यति धर्म में भी क्षमा का प्रथम स्थान आता है। अब देखना है कि धर्म के नाशक दोष कौन से हैं? इसके लिए कहा गया है कि क्रोध एवं लोभ से धर्म का नाश होता है। क्रोध व लोभ के कारण ही

'सम्भूति" मुनि ने जीवन भर की कठिन साधना को क्षण पल में नष्ट करदी। लोभ के वश ही उनको ब्रह्मदत्त चक्री के रूप में राज्य ऋद्धि मिलकर नरक का द्वार देखना पडा। पौधे की रक्षा के लिए जैसे किसान को जगली घास और कृषि नाशक कीट से उसे बचाना पडता है ऐसे ही धर्म को क्रोध लोभ से बचाना अत्यावश्यक है। गृहस्थ जीवन में भी क्रोध-लोभ आदि सीमित होने चाहिए। अहेतुक एव अतिक्रोध करने वाला कभी शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता और न वह कोई उच्च कार्य ही कर सकता है। इसलिए अनियन्त्रित क्रोध धर्म का नाशक है। आवश्यकता के अतिरिक्त सग्रह बुद्धि लोभ है और वह—"सव्व विणासणो" समस्त गुणगण का विनाशक कहा गया है। अत गृहस्थ को लोभातिशय नहीं करना चाहिए कहा भी है कि—अति लोभोन कर्तव्य लोभोनैव च नैव च। अति लोभ प्रसादेन सागर सागर गत।

(४)

धार्मिक समन्वय के प्रसग पर आप फरमाया करते थे कि ससार के सभी धर्म अहिंसा को एक स्वर से मानते हैं, वह मनुष्य के निजानुभव से भी प्रमाणित है। भेद है तो केवल क्रियाकाण्ड और वस्तु प्रतिपादन की शैली में। अत सत्य प्रेमी को शुद्ध दृष्टि से सामान्य तत्वों का आदर करना चाहिए। नीति में भी कहा है कि—"श्रूयता धर्म सर्वस्व, श्रुत्वा चैवावधार्यता। आत्मन प्रतिकूलानि, परेषा न समाचरेत्। अर्थात् अपने लिए जो प्रतिकूल हो वैसा व्यवहार दूसरों के साथ नहीं करना ही धर्म का

सार और मर्म है। इसे ध्यान से सुनो और हृदय में धारण करो। हिन्दी में भी कहा है कि—

निज आतम को दमन कर, पर आतम को चीन्ह।
पर आतम का भजन कर, सोही मत परवीन।

कितनी सचोट बात है ? सत्य के साथ मत का परीक्षण भी करा दिया है। अपनी आत्मा पर संयम-काबू करो, अन्य जीवों को भी अपने समान समझो और परम आत्मा को आदर्श मानकर उसका भजन एवं ध्यान करो। इन तीन बातों का जहां सही उपदेश हो वही मत या धर्म प्रवीण है। गीता में भी कृष्ण ने भी शब्दान्तर से इसी बात को कहा है—

मातृवत् परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्टवत
आत्मवत सर्व भूतेषु य पश्यति स पण्डित।

पूज्य आचार्य श्री के चातुर्मास

पूज्य श्री के कुल ५३ चातुर्मास हुए हैं जिनमें अधिकांश चातुर्मास पूज्य श्री कजोडीमल्लजी म० और पूज्य श्री विनयचन्दजी म० के सग ही हुए। पूज्य श्री विनयचन्दजी म० के स्वर्गवास बाद केवल ११ चातुर्मास स्वतत्र हुए हैं। उनमें १९७३ जोधपुर ठाणा ४, सवत् १९७४ बडलू ४ ठाणा, सवत् १९७५-७६ जयपुर सकारण ७ ठाणा, स० १९७७ पीपाड ६ ठाणा, स० १९७८ अजमेर ७ ठाणा, स० १९७९ से ८३ जोधपुर स्थिरवास ठाणा ८-९ श्रावण कृष्ण अमा के मध्यान्ह मे स्वर्गवास।

शासन काल मे साधु साध्वी—

आपके शासनकाल मे नव सन्त और ४०-४२ सतिया थीं। नवीन दीक्षा साधु की ४ और साध्वी वर्ग में हुई। शासनकाल मगल पूर्वक यशस्विता से बीता भावियुग के शिक्षण का साधु साध्वी वर्ग में विशेष प्रसार हुआ।

विहारप्रदेश—जोधपुर, जयपुर, ब्यावर अजमेर और बीकानेर के अतिरिक्त माधोपुर जिला एवं बूंदी, कोटा टोंक राजस्थान में ही प्रमुखता से रहा है। जयपुर में आपका पधारना और विराजना कारण से अधिक रहा। करीब २ संयम का एक तिहाई हिस्सा आपका इसी जयपुर में पूर्ण हुआ। आपके उपकार से आज भी जयपुर, जोधपुर की जनता (महान) उपकृत है।

लेखन—वाचन—

साधु जीवन की पठन पाठन, वाचन, लेखन, और ग्रन्थनिर्माण उपदेश दान जैसी प्रमुख प्रवृत्तियों में से आपका प्रमुख समय पठन और आगम वाचन में ही बीता। कुछ २ प्रकीर्ण लेखन भी आपके मिलते हैं। किन्तु सेवा साधन में आपका अधिकांश समय संलग्न होने से ग्रन्थ रचना या बड़े शास्त्र लेखन जैसा कार्य आप नहीं कर सके। उपदेश दान या शास्त्र वाचना प्राय प्रतिदिन किया करते थे। फिर भी आपका लेखन सुन्दर और शुद्ध था।

—पूज्य श्री का वश वृक्ष आगे देखिये।

आचार्य श्री की प्रिय पद्यावली

लोक भाषा के पद्यों में भी ऐसी २ अनूठी और वेशकीमती बातें भरी हुई हैं कि जिसकी कुछ सीमा नहीं। आचार्य श्री, भाषा नहीं उच्च भावों के ग्राहक थे। अतएव जो जहा अच्छाई देखने व सुनने में आती उसे मन में खचित कर लेते थे और समय २ पर श्रोतृ वृन्द के हृदय पर उसका प्रभाव अङ्कित करते थे। यहां उनकी अभ्यस्त प्रिय पद्यावली में से कुछ विविध प्रासगिक पद्य नमूने के तौर पर उद्धृत कर रहे हैं। जैसे—

गया गाव में गोचरी, पाणी मिल्यो न मूल।
आगे अलगो गाव छे, काई होसी सूल॥ १॥
किण विरिया किण साधने, कोई परीसा थाय।
सूरा ते सामा चढे, कायर भागा जाय॥ २॥
कायर धड हड कपिया, बैठा गोडी खाय।
पाणी विना हो पूज जी, पग भर खिस्यो न जाय॥ ३॥
गुरु बोल्या वछ मैं ह्यो, ओकरडो छे जोग।
आसग हुए तो आय मडो, पछे न करणो सोग॥ ४॥

नानीरा घर छे नहीं, सुसासरी रो खेल ।
विकट पथ साधु तणो, सैंठो हुवे तो मेल ॥ ५ ॥

उपरोक्त पद्यों में साधु जीवन की कठिनाइयों की झांकी और विकटता का चित्रण करते हुए बताया गया है कि "गांव में भ्रमण करते साधु को कभी ऐसा प्रसंग भी आता है कि पीने को थोड़ा सी पानी नहीं मिलता, तब आगे कैसे बढ़ना यह प्रश्न उठ खड़ा होता है। ऐसी विकट घड़ी में शूर हृदय संभल जाते किन्तु कायर दिल दूर भग जाते हैं। वे साहस खोकर बोल उठते हैं कि गुरुजी! पानी के बिना अब एक डग भी चला नहीं जायगा। शिष्य की ऐसी घबराई बात सुनकर गुरु कहते हैं कि वत्स! मैंने पहले ही कहा था कि योग का मार्ग कठिन है। तेरी शक्ति हो तो इसे स्वीकार कर किन्तु इस पथ पर कदम बढ़ा कर शोक नहीं करना। गृहस्थ जीवन की तरह यहां नानी बाड़ी का घर नहीं जो सीधे पहुँचते ही सब कुछ मिल जाय। यह विकट मार्ग है इसमें धीर वीर ही पार पा सकता है।

प्राह पूरवा तप तप्यो, गिरि में ग्यान धाय।
क्रोध रुपणी अगिन छ तिरवन परी बुझाय ॥ ६ ॥

क्रोध विषै ही मान का बड़ो मारयो आण।
मुसकल इण न मरदणो करे गुणानी हाण ॥ ७ ॥

मान विषै माया तणो तजवा कठा काम।
पुरुष थकी नारी कर, पणी पङावे नाम ॥ ८ ॥

माया विचै ही मद को, लोभ महा विकराल ।
पीतमित्राइ ना करे, सब गुण देवे चाल ॥ ६ ॥

इनमें क्रोध आदि कषायों के कटु फल का निदर्शन किया गया है ।

धर्म की महिमा में कैसा सुन्दर कहा है कि—

धर्म करत ससार सुख धर्म करत निरवाण ।
धर्म पथ साधन विना, नर तिर्यन्च समान ॥ १० ॥

सतों की सेवा से स्वय परमात्मा प्रसन्न होते है क्योंकि जिनके वालक को खिलाया जाता है, उसके माता पिता सहज ही प्रसन्न होते है ।

जैसे–सतन की सेवा किया, प्रभु रींझत है आप ।
जाका बाल खिलाइए, वाका रींझत बाप ॥ ११ ॥

सतोप से बढ कर और कोई धन नहीं–क्योंकि इसके प्राप्त होने पर—

गोधन गजधन रत्न धन, कचन खान सुखान ।
जब आवे सतोप धन–सब धन धूल समान ॥ १२ ॥

विना कठिन श्रम उठाए व्याकरण का वोध मुश्किल है देखिए–

बाल गले में गूदड़ी, निश्चय माडे मरण ।
घो, ची, पू, ली नित करे, जद आवे व्याकरण ॥ १३ ॥

जो साधु आचार व्यवहार में निर्मल है वे ससार मे शार्दूल सिंह है । निर्मल अन्त करण को किसका डर है । जैसे—

जे आधारे कृपाला, ते साधूसा सिंह ।
आपो राखे निर्मलो, तो किस रो आयो बीह ॥ १४ ॥

जो मन वचन और काय से किसी को दुःख नहीं देते उन संतों के मंगल दर्शन से कर्म रोग-भाग (दूर) जाता है। जैसे—

तन कर मन कर वचनकर, देत न काहू दुक्ख।
कर्म रोग पातक झरे, देखत वांका मुक्ख ॥ १५ ॥

समय अनमोल धन है उसका क्षण मात्र भी बेकार और बेकाम नहीं गँवाना चाहिए, आत्म हित के लिए कुछ न कुछ करते रहना चाहिए। जैसे—

शिष्य निकम्मो रहणो नहीं, करणो आतम काम।
भणना गुणनो सीखणो, रमणो ज्ञान आराम ॥१६॥

दीपशिखा वृक्ष से शुद्ध सेवा आदि का सार निकालना ही बुद्धिमानी है। जैसे—

या देही देवालयी, आयो नीसर जाय।
तप कर सार निकालिए, ज्यूं आगे सुख थाय ॥१७॥

बिना भजन और ज्ञान ध्यान के गृहस्थों का काम लाभदायक नहीं होता—साधु सन्तों को इसे कभी नहीं भूलना चाहिए। जैसे—

गृहस्थ धन का दूजणा सम्बा लम्बा दांत।
भजन करे तो ऊबरे, नहिं तो काढ़ आंत ॥१८॥

नदी नाव संयोग वाला इस जगत में सबसे हिल मिल कर रहना चाहिए। जैसे—

साईं या ससार मे, भाति भाति के लोग।
सबसे हिल मिल चालिए, नदी नाव सयोग ॥१९॥

मर्मवाणी—

निज आत्मा को दमन कर दूसरे की आत्मा को अपने समान समझो और परमात्मा का भजन करो यही सब मत का सार है। जैसे—

निज आतम को दमन कर, पर आतम को चीन्ह।
परमातम को भजन कर, ये मत ही परवीन ॥२०॥

पिता पुत्र के कलह कोलाहल मे दोनो की सगर्भा स्त्री के मरणोपरान्त पश्चात्ताप युत पुन दोनों की मृत्यु से छ की सगति बैठाते हुए कहा है कि—

एक मरता दो मूआ, दोय मरता चार।
चार मरता छ मर्या, लीजो अर्थ विचार ॥२१॥

संस्कृत—

अत्यन्त लोभ नहीं करना चाहिए क्योंकि अत्यन्त लोभ का परिणाम बुरा होता है। जैसे—

अति लोभो न कर्तव्य, लोभो नैव च नैव च।
अति लोभ प्रसादेन, सागर सागर गत ॥२२॥

मूर्ख के लिए हित कर्तव्य भी बुरा होता है, जैसे कि साप को दूध पिलाना और नकटे को दर्पण दिखाना। देखिए—

हितहू की कहिए नहिं, जो नर होत अबोध।
ज्यू नकटे को आरसी, होय दिखाया क्रोध ॥२३॥

जे आचारे ऊजला, ते साधूला सिंह ।
आयो रास निमलो, तो किण रो आयो बीह ॥ १४ ॥

जो मन वचन और काय से किसी को दुःख नहीं देते उन संतों के मंगल दर्शन से कर्म रोग–भय (दूर) जाता है। जैसे—

तन कर मन कर वचनकर, देत न काहू दुःख।
कर्म रोग पातक झरे, देखत वांका मुख ॥ १५ ॥

समय अनमोल धन है उसका क्षण पल भी बेकार और बकाम नहीं गंवाना चाहिए, आत्म हित के लिए कुछ न कुछ करते रहना चाहिए। जैसे—

खिण निकम्मो रहणो नहीं, करणो आतम काम।
भणनो गुणनो सीखणो, रमणो ज्ञान आराम ॥१६॥

दीपाशिए देह से प्राप्त सेवा आदि का सार निकालना ही बुद्धिमानी है। जैसे—

या देही देवाळणी, लायो नीसर आय।
तप कर मास्त निकालिए, म्हू आगे सुख थाय ॥१७॥

बिना भजन और ज्ञान ध्यान के गृहस्थों का अन्न लाभदायक नहीं होता—साधु सन्तों को इसे कभी नहीं भूलना चाहिए। जैसे—

गृहस्थ जन का टूकड़ा लम्बा लम्बा दांत।
भजन करे तो ऊपरे, नहिं तो काढ़े आंत ॥१८॥

नदी नाव संयोग बाज़ इस जगत में सबसे हिल मिल कर रहना चाहिए। जैसे—

केलि करे शिव मारग में,
जग माहिं जिनेश्वर के लघु नन्दन ॥
सत्य स्वरूप सदा जिनके,
प्रगट्यो अवदात मिथ्यात्व निकन्दन ।
सन्त दशा तिनके पहिचान,
करे करजोरी 'बनारसी' वन्दन ॥३०॥

रात्रि भोजन दोष—

आधो जीमण रात को, करे अधर्मी जीव ।
ओछा जीतव कारणे, देवे नरकरी नीव ॥
देवे नरकरी नीव, रीव करसी भवर में ।
पचसी कुंभि माय, बले ज्यूं ठूंठा दव में ॥
परमा धामी जीवडा, धनी उड़ावे भीख ।
'रतन' कहे तज रातरो, सुण सुण सत गुरु सीख ॥३१॥

चिडी कमेडी कागला, रात चुगन नहिं जाय ।
नर देह धारी मानवी, रात पड्या किम खाय ॥
रात पड्या किम खाय, जाय मार्या त्रास प्राणी ।
कीट पतंगा, कुंथुआ, पडे भाणा में आणी ॥
लट, गीजाई, सुलसली, इली अड समेत ।
'रतन' कहे धिक तेहने, खावे कर कर हेत ॥३२॥

मनुष्य चालबाजी से अपने दोष को छिपाता और समझता है कि मेरी होशियारी के सामने कौन क्या करेगा, किन्तु सुन्दर-

पय पानं भुजंगानां, केवलं विष वर्धनम् ।
उपदेशो हि मूर्खाणां, प्रकोपाय न शान्तये ।।२४।।

निष्कर्म बनकर न रहो, कुछ करो। जैसे—
हाथ तेरे पांव तेरे, मानुस की देह रे।
मॅपड़ी तू क्यू न पावे, ऊपर बरसे मेह रे ।।२५।।

सन्तोष—

अपनी रूखी खाय के, ठंडा पानी पीव।
देख पराई चोपड़ी, मत तरसावे जीव ।।२६।।

क्षमा—

कोड़ पूय को तप तपे, एक सहे कोइ गाल।
उस में नफो है घणो, मेटो मन की झाल ।।२७।।

गुरु अभक्ति का परिणाम—

काम दहन किरिया करे, गुरु से राखे द्वेष।
फले न फूले 'माधवा' करणी करो अनेक ।।२८।।

गुरु महिमा—

गुरु कारीगर सारखा टांकी वचन रसाल।
पत्थर से प्रतिमा करे, पूजा लहे अपार ।।२६।।

सम्यक् ज्ञानी के लक्षण—

भेद विज्ञान जग्यो जिनके घट,
शीतल चित्त भयो जिमि चन्दन।

केलि करे शिव मारग में,
जग मांहिं जिनेश्वर के लघु नन्दन ॥
सत्य स्वरूप सदा जिनके,
प्रगट्यो अवदात मिथ्यात्व निकन्दन ।
सन्त दशा तिनके पहिचान,
करे करजोरी 'वनारसी' वन्दन ॥३०॥

रात्रि भोजन दोष—

आधो जीमरा रात को, करे अधर्मी जीव ।
ओछा जीतव काररो, देवे नरकरी नीव ॥
देवे नरकरी नीव, रीव करसी भवर में ।
पचसी कु भि माय, वले ज्यू टूठा दव में ॥
परमा धामी जीवडा, घनी उडावे भीख ।
'रतन' कहे तज रातरो, सुरा सुरा सत गुरु सीख ॥३१॥

चिडी कमेडी कागला, रात चुगन नहिं जाय ।
नर देह धारी मानवी, रात पड्या किम खाय ॥
रात पड्या किम खाय, जाय मार्या त्रास प्राणी ।
कीट पतगा, कु थुआ, पडे भाणा में आणी ॥
लट, गीजाई, सुलसली, इली अड समेत ।
'रतन' कहे धिक तेहने, खावे कर कर हेत ॥३२॥

मनुष्य चालबाजी से अपने दोप को छिपाता और समझता है कि मेरी होशियारी के सामने कौन क्या करेगा, किन्तु सुन्दर-

दासजी कहते हैं कि आग पोपांबाई का राज्य नहीं जहां "टके सेर भाजी और टके सेर खाजा" होते हैं। इसलिए—

करत प्रपंच इन पंचन के वश परयो,
पर दारा रत भयो मानव भुराई को।
पर द्रव्य हरे, पर जीवन की करे घात,
मद मांस खात लव लेश न भलाई को।
करेगो हिसाब जब सुख तो न भाजें आज
'सुन्दर' कहत लखो लत राई राई को।
यहां तो करियो विलास जम की न मानी त्रास
वहां तो नहिं है कछु राज पोपांबाई को॥३३॥

पशु का शरीर जीते भी काम आता और मरने पर भी काम आता है, उनके सामने मनुष्य देह का क्या उपयोग नहीं बताते हैं—

हाथी के हाड के खिलौने बने भांत भांत
बाघ की बाघम्बर तपसी शंकर मन भात है।
मृगहू की मृगछाला ओढत हू जती जोगी
बकर की खालसूं पानी भर पात है।
सांभर की खाल हू बांधत सिपाही लोग
गैंडे की ढाल राजा राणा मन भात है।
नर्मी और नरी दोऊ संग चले "मनीराम"
मानुस का देह देखो कहा काम आत है॥३४॥

विधवाओं को किस प्रकार रहना चाहिए इस प्रसग में निम्न पद्य ध्यान देने योग्य है—

विधवा को सोहे नहीं, काजल टीकी सिणगार।
भारी कपड़ा पहनना, ककण मोती हार॥
ककण मोती हार, बले पीलग न सोवे।
तपस्या करे अभग, हाथ ले काच न जोवे॥
स्नान उबटन ना करे, चोवा चन्दन सिद्धवा।
लिलोती कन्द न भखे, रात न खावे विद्धवा॥३५॥

कुसगत के दोष का परिचय देते हुए "रामचरण" जी ने कितने सुन्दर ढङ्ग से कहा है—

कुसगत में "रामचरण", तू मत बैठे जाय।
जैसे हाथ लुहार की, कोई पडे पतग्यो आय॥
पडे पतगो आय, गाठ का कपडा जाले।
कुसगी कुसग आगली पैठ विगाडे॥
ताते सगत कीजिए, गधी गध सुवास।
कुसगत में "रामचरण", तू मत वैठे जाय॥३६॥

मनुष्य जन्म के महत्व पर आध्यात्मिक निष्ठावान् कविवर बनारसीदासजी ने कहा है कि जैसे मति हीन मनुष्य विवेक के विना हाथी को सजा कर उस पर ईधन ढोता है तथा सोने के थाल में कोई धूलि भरता है और कोई अमृत से पैर धोता है तथा कौए को उड़ाने के लिए कोई मूर्ख चिन्तामणि को खोकर

दासजी कहते हैं कि आगे पोपांबाई का राज्य नहीं यहां "टके सेर भाजी और टके सेर खाजा" होता है। इसलिये—

करत प्रपंच इन पंचन के बस पर्यो
पर दारा रत भयो मानत बुराई को।
पर द्रव्य हरे, पर जीवन की करे घात,
मद्य मांस खात, लव लेश न भलाई को।
करेगो हिसाब जब मुख से न आवे जाब
'सुन्दर' कहत लेखो लेत राई राई को।
इहां तो करियो विलास जम की न मानी त्रास
वहां तो नहिं है कछु राज पापांबाई को ॥२३॥

पशु का शरीर जीते भी काम आता और मरने पर भी काम आता है उनके सामने मनुष्य देह का क्या उपयोग यही बताते हैं—

हाथी के दांत के खिलौने बने भांत भांत,
बाघ की बाघम्बर तपसी शंकर मन भात है।
मृगहू की मृगछाला ओढ़त हैं सभी जोगी,
बकरे की खालसूं पानी भर लात है।
सांभर की खाल हूं बांधत सिपाही लोग
गैंडे की ढाल राजा राणा मन भात है।
नेकी और बदी दोऊ संग चले "मनीराम"
मानुस की देह ऐसो कहा काम आत है ॥२४॥

राम चढ्यो दल वादल लेकर, घेर लियो गढ़ लकपती को।
देखो चतुर पुण्याइ विना नर, एक रती विन पाव रती को॥३६॥

सातमो खड चल्यो जव साभन, हिये हुलास धरे कुमति को।
लोग सभी समझाय रहे, पिण वात न माने नीच गति को॥
सोलह सहस्र सुर छोड समुद्र मे, रथ डुवायो राजपति को।
देखो चतुर पुण्याई नर, एक रती विन पाव रती को॥४०॥

समय का मूल्य—

समय कितना मूल्यवान् है और उसकी सफलता के लिये मनुष्य को क्या करना चाहिये, इसी वात को कहा है—

एक सास खाली मत खोइए खलक वीच,
कीचक कलक अग वोयले तो वोयले।
उर अधियार पुर पाप सु भर्यो है तामें,
ज्ञान की चिराग चित्त जोयले तो जोयले।
मानुष जनम ऐसे फेर न मिलेगा मूढ,
परम प्रभु से प्यारो होयले तो होयले।
खण भग देह तामें जनम सुधारवे को,
वीज के झमके मोती पोयले तो पोयले॥४१॥

अनित्य तन धन का संकेत—

क्या मृत्यु के समय कोई सहायता कर सकता है—

धर्यो ही रहेगो, धरा धूर माझ गाडे धन,
भरोहि रहेगो भडार वहुवानी के।

रोता है ऐसे ही यह मनुष्य जन्म दुर्लभ है, इसको व्यर्थ में खोने वाला भी मूर्खों की तरह पछताता है—

ज्यों मतिहीन विवेक बिना नर, साजि मतंगज ईंधन ढोवे।
कंचन भाजन धूल भर शठ, मूढ़ सुधारस सौं पग धोवे॥
बाहित काग उड़ावन कारण, डार महामणि मूरख रोवे।
त्यों दुर्लभ नर देह बनारस, मूरख पाय अकारण खोवे॥१७॥

दान जैसे महत्त्वशील कर्म पर अनुभवी कवि ने पात्र भेद से कितना सुन्दर प्रकाश डाला है—

दीन को दीजिए होत दयावन्त
मित्र को दीजिए प्रीति बढ़ावे।
सेवक को दीजिए काम करे बहु,
शायर को दीजिए आदर पावे॥
शत्रु कू दीजिए, वैर रहे नहीं
याचक को दीजिए कीरति गावे।
साधु कू दीजिए मुक्ति मिले,
पिया हाथ को दीयो एक न आवे॥१८॥

पुण्य के बिना सब व्यर्थ—

बड़ से बड़ा वैभवशाली मानव भी पुण्यक्षीण होने पर कैसा उपहास पात्र होता है इसीको रावण के उदाहरण से बताया गया है देखिये—

रावण राज करे तीन खंड को भोग विलास मनोरमती को।
बुद्धि विध्वंस हुई तिण अवसर सीता हरी पर मान मती को॥

राम चढ्यो दल वादल लेकर, घेर लियो गढ़ लकपती को ।
देखो चतुर पुण्याइ विना नर, एक रती विन पाव रती को ॥३६॥

सातमो खड चल्यो जव साभ्मन, हिये हुलास धरे कुमति को ।
लोग सभी समझाय रहे, पिण वात न माने नीच गति को ॥
सोलह सहस्र सुर छोड़ समुद्र में, रथ डुवायो राजपति को ।
देखो चतुर पुण्याई नर, एक रती विन पाव रती को ॥४०॥

समय का मूल्य—

समय कितना मूल्यवान् है और उसकी सफलता के लिये मनुष्य को क्या करना चाहिये, इसी वात को कहा है—

एक सास खाली मत खोइए खलक वीच,
कीचक कलक अग धोयले तो धोयले ।
उर अ धियार पुर पाप सु भर्यो है तामें,
ज्ञान की चिराग चित्त जोयले तो जोयले ।
मानुप जनम ऐसे फेर न मिलेगा मूढ,
परम प्रभु से प्यारो होयले तो होयले ।
खण भग देह तामें जनम सुधारवे को,
वीज के झमके मोती पोयले तो पोयले ॥४१॥

अनित्य तन धन का संकेत—

क्या मृत्यु के समय कोई सहायता कर सकता है—

धर्यो ही रहेगो, धरा धूर माझ गाडे धन,
भरोहि रहेगो भडार वहुवानी के ।

पड़े ही रहेंगे गजराज सब जंजीरन सौं,
खड़ेही रहेंगे अरबमान पेय पानी के ।
प्रान काल गहेगो तब करेगो सहाय कौन,
धरेही रहेंगे अंग चोवा मरदानी के ॥४१॥
चाकी सुख बानी माया होयगी बिरानी जब,
कोऊ राजधानी साखी होयगो मसानी को ।

काल अप्रतिकार्य है—

सबका इलाज हो सकता है किन्तु काल का इलाज विज्ञानी के पास भी नहीं । कहा भी है—

दरद का इलाज कीजे, वैद्यकु बुलाय लीजे,
रोगी का इलाज कीजे दीजे पानी दारू का ।
राड़ का इलाज कीजे, बीच में बिस्टाला दीजे,
राम का इलाज कीजे दीजे लोभ माल का ।
भाई का इलाज कीजे मीठा वचन बोल लीजे,
दुर्जन का इलाज कीजे देके चोका दस का ।
कहे कवि 'माधोदास' कब लग कहूं बखाण,
सबका इलाज है इलाज नहिं काल का ॥४२॥

धर्म शिक्षा की महिमा—

सब कुछ सीखा किन्तु धर्म विचार नहीं सीखे तो सारे बेकार हैं कहा भी है कि—

सीखियो संसार रीत कवित्त गीत नाद छंद
सोखियो मीन मन एक सागर में ।

सीखियो सोदागरी, सर्राफी, वजाजी सीखी,
लाखन का फेरफार, चूहा जावे कूड में।
सीखे जव जत्र मन्त्र, तन्त्रन कु सीख लिए,
पिंगल पुराण सीखे, सीखे भए सुर में।
सीखे सब बात घात, निपट सयाणे भए,
धर्मकू न सीखे सब सीखे गए धूर में ।।४४।।

संसार में कठिन क्या है?—

इसको 'वेताल कवि' ने निम्न शब्दों में कहा है—
कठिन प्रीत की रीत, कठिन तन मन वश करबो।
कठिन कर्म को फद, कठिन भवसागर तिरबो।।
कठिन करण उपकार, कठिन मन मारण ममता।
कठिन विपद में दान, कठिन सपत में समता।।
वचन निभावन अति कठिन, निर्धन नेह पालन कठिन।
'वेताल' कहे विक्रम सुनो, ज्ञान युद्ध जीतण कठिन ।।४५।।

अनगार वंदना—

सच्चे अनगार का स्वरूप और उसका वन्दन करते कहा है कि—
पाप पथ परिहरे, मोक्ष पथ पग धरे,
अभिमान नहीं करे निंदाकु निवारी है।
ससारी को छोड्यो सग, आलस नहीं छे अ ग,
ज्ञान सेती राखे रग मोटा उपगारी है।
मनमाहिं निर्मल जैसे है गगा को जल,
काटत कर्मदल नवतत्व धारी है।

संयम की करे रुप, धारे भेदे धरे तप,
ऐसे अणगारता को वंदना हमारी है ॥४६॥

संस्कृत —

आशा की महत्ता–

अ गं गलितं पलितं मुं डं, दशनविहीनं जातं तुंडं।
वृद्धो याति गृहीत्वा दंडं, तदपि न मुं चति आशा पिंडं॥
दिनमपि रजनी सायं प्रातः, शिशिर वसन्तौ पुनरायातः।
कालः क्रीडति गच्छत्यायुः तदपि न मुञ्चत्याशा वायुः॥

कौन नम्र होता है—

नमे तुरी[1] बहु तेज नमे दातार दीर्यतो।
नमे अम्ब बहु फल्यो, नमे 'जलहर'[2] बरसन्तो॥
नमे सम्स अंकूर, नमे कामण कुल नारी।
केहर[3] नमे कुं जर[4] नमे, गड बेल समारी॥
कंचन नमे कसोटिया, वयण 'मद्य' सांचा चवे।
सूको काठ अजाण नर, मारा पड़े पिण ना नमें॥४८॥

काल का नक्कारा—

धुरे (बजे) नगारा कालका छिन मर छाना नांहि।
कोई आज है कोई काल है, कोई पाव पलक के मांहि॥
पाव पलक रे मांहि समझ रे मनवा मेरा।
धर्म्मा रहे मन माहं होय जंगल में डेरा॥

---

१ घोड़ा २ मेघ-बादल, ३ केसरी सिंह, ४ हाथी।

कहे 'दीन दरवेश', भजन से जीन जमारा।
छिन भर छाना नाहीं, कालका घुरे नगारा ॥४६॥

समय दशा—

प्रीत गई परतीत गई, रस रीत गई विपरीत भई है।
ओर परी है कुचाल कुरीतसु, चालसु रीत पताल गई है ॥
ज्ञान विवेग वेराग को जीत के, तातहु लोभ नलील लही है।
'माधव' एगत देख दसों दिश, दन्तन के तल जीभ दई है ॥५०॥

न्याय—

एक अहीरी चली पय वेचण, पानी मिलाय भई सुखयाणी।
लोभ के लछन पाप कियो जीव, जानत है एक आतम ज्ञानी ॥
जाय बाजार में बेच दीयो, द्रव्य दूनो भयो मन में हरसाणी।
बन्दर न्याय कियो अति उत्तम, दूध को दूध ने पानी का पानी ॥५१॥

सन्तोष के लिये सुन्दरदासजी ने क्या कहा है—

जो दश वीस पचास भये, शत होय हजार तो लाख मगेगी।
कोटि, अरव, खरव, असख्य, धरापति होने की चाह जगेगी ॥
स्वर्ग, पताल को राज मिले, तृष्णा तबहूँ अति आग लगेगी।
'सुन्दर' एक सतोष बिना, शठ तेरी तो भूख कभी न भगेगी ॥५२॥

कवि मंग की प्रभु निष्ठा—

एक को छोड़ दूजा कु रटे, रसना जो कटे उस लब्बर की।
श्रीपत तो गोविन्द रटे, सो सक न मानत जब्बर की ॥
कल की दुनिया जु रटे, सिर बाधत पोट अडम्बर की।
जिनकु परतीत नहिं प्रभु की, सो मिल करो आस अकब्बर की ॥५३॥

धर्म के बिना मनुष्य पशु के समान है—

दीसत नर ह कुढरे¹, पर लच्छन तो पशु के सबही है।
खावत, बैठत, सोवत, पीवत, सोचत ही पर जात सही है॥
धर्म बिना धन्धे में दिन कटत, बैल ज्यूं पर को भार वही है।
और बात सबु आय मिली, पिय एक कमी सींग पूंछ नहीं है॥५४॥

मन की दशा के लिये कहा है—

कबहूं मन सागर सोच परियो, कबहु मन वांछित सुख अपारा।
कबहु मन दौलत भोगन पै, कबहु मन रोग की रीत संभारा॥
कबहु मन फिरता भूत रहे, कबहु मन छिन में कोश हजारा।
मोवानर क्यों न विचार करो, इस मनकी लहर का अंत न पारा॥५५॥

काया देवल मन धजा, विषय लहर लपटाय।
मन डिगे ज्यूं काया डिगे, तो जड़ामूल ढह जाय॥

---

१ स्वरूप-सुन्दर।

आचार्य-गुण-गीतिका

[१]

वाहुले विमले दले हि तिथौ गुरौ जनिता,
वहु भाग्यतो जनिराप यो दिवसे यथा सविता,
यत्कृतिर्भुवि भासते प्रतिभावता कविता,
का न तस्य मति सता शुभमुद्वती भविता,
मुनिरेष इहैधत धी विभवो।

[२]

कति सन्ति चावतरन्ति ते नर कानने विबुधा,
सति साधने धिय एव ते कृतिमाचरन्ति मुधा,
कति शान्ति सन्मति मद्गिराधरयन्ति वैहि सुधा,
पाप्रष्टि शोभाचन्द्र पूज्य वशावदित व सुधा,
मुनिरेष इयेष शिव सशिवो।

[३]

भुवि धीलव प्रभवैर्मदै. कति समदन्ति जना,
शमलेशत. शमिना वराश्च भवन्ति धर्म धना,

अधिकारमल्पमवाप्य कस्यनयं चरन्त्यनिशाम्,
मति शान्ति नीरधिरप्यसाधिह मौनमास सुराम्,
मुनिरेष जयौ जिनसुरत्न नवो।

[४]

सति कारणे सति योऽकरोद् रुपमीपवत्र क्वचित्,
निशि कौमुदीव जहास यस्ये समागमे शमचित्,
समये स्वकीय शशाङ्कसुखनाम्बां मधुचित्
कलिकाल अन्य कर्सि जहौ क्रिमप्या चिया कालिगित्,
मुनिरेष वदाशु शमानपि यो।

[५]

मति मूर्ति-मा मतिमाधवां जिनयाति धैर्यवताम्,
इह पूजिता परमार्थतो यतयोऽभवन् महताम्,
नहि तेषु कोपि जुगोप कोप सिद्धस्य योऽस्तु समः,
किमु तेषमां गुणनार्द्र भविता क्वापि यमः,
मुनिरेष जयौ जिनसुरत्न नवो।

[६]

मतिमन्त माकुलतां नयन्ति मतीरनङ्ग पथे
दुर्मेधसो इयरा भ्रमन्ति जना सदा कुपथ
अत्र सत्रयकारि चरणतादि दोषपथे
के न अपयमाश्रयन्ति विमान्तु या मुनि ये,
मुनिरेष जयौ जिनसुरत्न नवो।

—गुणानुरक्तस्य दुःखमोचनस्य।

श्रद्धाञ्जलि

परमारथ के पथ के पथिकेश,
परार्थ सुसाधन सत्कृति ठानी।
पुरुपार्थ चतुष्टय युत जिनके,
झरती मुख से नित अमृतवाणी।
लखते भव भव्य अलभ्य जिनागम,
मे जिनको महिमामय ज्ञानी।
उपदेश विशेप कला कृति मे
जो रहे निशिवासर कर्ण से दानी।

× × × ×

स्वर्गीय परमपूज्य आचार्य श्री शोभाचन्द्रजी महाराज साहब की पुण्य स्मृति में श्रद्धा के दो शब्द अर्पण करने को मैं अपना अहोभाग्य समझता हूँ। गुरुजनों के प्रति प्रेम व सम्मान की भावना प्रत्येक श्रावक के हृदय में जागृत होना स्वाभाविक है, परन्तु ऐसे गुरु जिनके सद्गुणों का प्रभाव श्रावक के चरित्र निर्माण में एक चिरस्थाई छाप जमा दे इस युग में विरले ही होते है। यह केवल मेरी ही नहीं, अपितु मेरे अधिकतम मित्रों की जिनको कि पूज्यश्री के सम्पर्क और सेवा का सौभाग्य प्राप्त था धारणा है कि वे उन विरले गुरुजनों में से एक थे जिनकी आत्म-बल की साधना से समाज के आध्यात्मिक व नैतिकबल के उत्थान मे बडी प्रेरणा मिली। उनके सद्गुणों की व्याख्या करने में मैं अपने को असमर्थ पाता हूँ, पर यह मेरी हार्दिक अभिलापा है कि उनके बताये हुए चिन्ह मेरे जन्मजन्मान्तर के पथ-प्रदर्शक रहें।

डा० शिवनाथ चन्द मेहता
जयपुर

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता है कि स्वर्गीय आचार्य पूज्यश्री शोभाचन्द्रजी महाराज साहिब की जीवनी उनके सुशिष्य व भूतपूर्व आचार्य तथा वर्तमान बृहत् संघ के सह मन्त्री स्वनाम धन्य श्री हस्तीमलजी म० साहब के मार्गदर्शन में प्रकाशित हो रही है। मुझे दिवंगत आचार्य श्री के सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था यद्यपि मैं उस समय विद्यार्थी था। आचार्य श्री के प्रति मेरी सदैव अगाध श्रद्धा रही है। वे एक महान् प्रभावशाली व्यक्तित्व लिये हुए सन्त थे जिनकी छाप जो भी उनके सत्सम्पर्क में आये उनके लिये अमिट सी बनी हुई है। आचार्य श्री के महान् गुणों का वर्णन करने की सामर्थ्य मेरी लेखनी की शक्ति के बाहर है। मैं यह अवसर लेना चाहता हूँ उनके प्रति अपनी छोटी सी तथा विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने के लिये। आचार्य श्री जैसी एक महान् विभूति का जीवन चरित्र बहुत ही सुन्दर व सजीव ढंग से लिखा गया है। मानव समाज के मार्गदर्शकों में जैन गुरुओं का स्थान सदैव प्रकाशमान रहा है और आचार्य शोभाचन्द्रजी महाराज के इस जीवन चरित्र का जैन साहित्य में एक उज्ज्वल शोभा तथा गौरव का स्थान रहेगा यह निस्सन्देह है। इस महान् प्रेरणा तथा स्फूर्तिदायक कृति के लिये मेरी हार्दिक बधाई।

इन्द्रनाथ मोदी
न्यायाधीश
(हाईकोर्ट राजस्थान) जोधपुर